# प्राचीन भारत के प्रमुख ज्ञान केंद्र

1. **नालंदा:** इसकी स्थापना का श्रेय गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम (450 से 470 ई.) को प्राप्त है। वैश्विक स्तर पर ख्याति प्राप्त इस अध्ययन केंद्र में बौद्ध साहित्य, ललित कलाओं, औषधि, गणित, खगोलशास्त्र, राजनीति विज्ञान और युद्ध कला आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। गुप्त-साम्राज्य के दौरान यह खूब फला-फूला। इसे 1200 ई. के आसपास बख्तियार खिलजी ने तहस-नहस कर दिया।

2. **तक्षशिला:** प्राचीन गंधार का यह हिस्सा अब पाकिस्तान में स्थित है। इसकी स्थापना पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व मानी जाती है। यहां प्रखर विद्वान चाणक्य ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' लिखा और आयुर्वेद के विद्वान चरक भी इसी से संबद्ध थे।

3. **विक्रमशिला:** यह बिहार में आठवीं शताब्दी में राजा धर्मपाल द्वारा स्थापित एक प्रमुख अध्ययन केंद्र था।

4. **ओदांतपुरी:** बिहार स्थित इस अध्ययन केंद्र को पाल वंश के शासक गोपाल प्रथम ने आठवीं शताब्दी में स्थापित किया था।

5. **वल्लभी विश्वविद्यालय:** गुजरात स्थित यह प्राचीन विश्वविद्यालय लगभग 600 ई. में स्थापित किया गया और 1200 ई. तक रहा।

6. **पुष्पगिरि विश्वविद्यालय:** यह उड़ीसा में है। इसे तीसरी शताब्दी में स्थापित किया गया था जिसे पुष्पगिरि महाविहार भी कहा जाता था।

7. **उदयगिरि:** वास्तव में यह पुष्पगिरि विश्वविद्यालय का ही एक भाग था। इसके कई स्तूप और विहार हैं।

8. **रत्नगिरि:** इसे उड़ीसा के जाजपुर जिले में पांचवी शताब्दी में स्थापित किया गया।

9. **धम्मयांग मंदिर:** यह म्यांमार स्थित बौद्ध मंदिर व अध्ययन केंद्र है। इसका निर्माण राजा नारथू के शासन काल 1167 से 1170 के दौरान हुआ।

10. **नागार्जुनकोंडा:** यह आंध्र प्रदेश में गुंटूर स्थित ऐतिहासिक स्थान है जो प्राचीन समय में अध्ययन केंद्र के रूप में विख्यात था।

11. **कांची कैलाशनाथ मंदिर:** यह तमिलनाडु में चेन्नई के निकट ऐतिहासिक शहर कांचीपुर में स्थित शिव मंदिर है। कांची को 'घटिका स्थानम' कहा जाता था जिसका मतलब अध्ययन केंद्र होता है। यहां भगवान विष्णु के 14 मंदिर हैं। आदि शंकराचार्य द्वारा स्थापित कांची मठ भी यहीं स्थित है जिसे कांची कामकोटि पीठ कहते हैं।

12. **सोमपुर महाविहार:** बांग्लादेश स्थित इस महाविहार को राजा धर्मपाल के समय 781 ई. से 821 ई. के दौरान निर्मित किया गया था।

13. **जगद्दल महाविहार:** यह बांग्लादेश में है जिसे राजा रामपाल ने बनवाया था जिनका कार्यकाल 1077 से 1120 ई. माना जाता है।

Government of India
Ministry of Tribal Affairs

Hon'ble Minister
Shri Jual Oram

Shri Jaswantsinh Sumanbhai Bhabhor

Shri Sudarshan Bhagat

Hon'ble Minister of State

# GIANT LEAP IN TRIBAL DEVELOPMENT EFFORTS

## BUDGET OF THE MINISTRY

**Total of ₹. 24,479 crores allocated to the Ministry during 2014-15 to 2018-19, which is more than total combined allocation during the previous 10 years i.e. 2004-05 to 2013-14 (wherein only an amount of ₹. 23,574 crore was allocated)**

## Scheduled Tribe Component (STC)

(earlier known as Tribal Sub Plan)

**Ministry entrusted with the responsibility to monitor allocations under STC**

- www.stcmis.gov.in portal launched to monitor financial and physical performance of funds utilized by Central Ministries/ Departments under STC

## Tribal Freedom Fighter

**6 Memorials**

Two of National Importance - Narmada (Gujarat) & Birsa Munda Central Jail, Ranchi (use of state-of-the-art technology including Virtual Reality and Augmented Reality).

## Skill Development

**Rigorous persuasion and review with States results in 98% increase in expenditure by States for Tribal Development**

## Ekalavya Model

**74 EMRS made functional**

- Student strength has doubled from 2013-14 to 2017-18
- Currently more than 60,000 students.
- 106 new EMRSs sanctioned in last 4

## www.tribal.nic.in/repository

A unique digital repository of more than 10,000 photographs, videos and publications related to Tribals in India launched

## TRIFED

Value of Sales increased from ₹. 11.37 crores in 2016-17 to ₹. 20.08 crores (provisional) during 2017-18, a record increase of 77% and a record sale in the history of TRIFED.

MoUs signed with many e-Commerce portals like Amazon, and institutions like NIFT.

## http://ngograntsmota.gov.in

Online portal launched to streamline Grants release process for NGOs & Shift from reimbursement mode with a gap of two years, to release of grant during the currency of the financial year for the first time since the launch of the scheme

## Minimum Support Price for Minor Forest Produce (MSP to MFP)

₹ 100/-

**संरक्षक मण्डल**
श्री लक्ष्मीनिवास झुंझुनूवाला
श्री रघुपति सिंघानिया
श्री गोपाल जीवराजका
श्री आलोक बी. श्रीराम
श्री महेश गुप्ता
श्री रवि विग
श्री अनिल खेतान
श्री ललित कुमार मल्होत्रा
श्री सुबोध जैन
श्री सुदर्शन सरीन
श्री प्रदीप मुल्तानी

**सम्पादक मण्डल**
श्री राम बहादुर राय
श्री अच्युतानंद मिश्र
श्री बलबीर पुंज
श्री अतुल जैन

**शोध एवं संपादन**
श्री संजीव नायक
श्री उत्पल कौल
डा. विकास द्विवेदी

# मंथन

**सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम**

**वर्ष -39, अंक-4** **अक्टूबर-दिसम्बर 2018**

## भारतीय ज्ञान परंपरा विशेषांक

**सम्पादक**
**डॉ. महेश चन्द्र शर्मा**

**प्रबंध सम्पादक**
श्री अरविंद सिंह
arvindvnsingh@gmail.com

**सज्जा**
श्री नितिन पंवार
nitin_panwar@yahoo.in

**मुद्रण**
श्री विपिन वर्मा
प्रिंट क्राफ्ट इंडिया
शाहदरा, दिल्ली

प्रकाशक
**एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान**
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002
दूरभाष : 011–23210074
ईमेलः manthanmagzin@gmail.com, ekatmrdfih@gmail.com

# अनुक्रम


| | | | |
|---|---|---|---|
| 1 | आवरण पृष्ठ का विवरण | | 1 |
| 2 | सम्पादकीय | | 5 |
| 3 | भारतीय वांङमय बनाम आधुनिक अज्ञानता | पं. काशीराम शर्मा | 10 |
| 4 | भारतीय ज्ञान परंपरा का वैशिष्ट्य | प्रो. कपिल कपूर | 14 |
| 5 | भारतीय राजनीति की संकल्पना | रंगा हरि | 20 |
| 6 | भारतीय ज्ञान परंपरा का नवांकुरः एकात्म मानववाद | डॉ. महेश चंद्र शर्मा | 29 |
| 7 | विविध पंथानुगामी भारतीय अध्यात्म | डॉ. कृष्ण गोपाल | 37 |
| 8 | भारत तथा राष्ट्र भाव | डॉ. सच्चिदानंद जोशी | 47 |
| 9 | भारतीय संस्कृति में अर्थ | दीनदयाल उपाध्याय | 54 |
| 10 | भारतीय परिदृश्य में आर्थिक प्रक्रियाएं | डॉ. पी. कनकसभापति | 60 |
| 11 | प्रकृति और पर्यावरण | डॉ. कपिल तिवारी | 63 |
| 12 | दैशिक शास्त्रः एक परिचयात्मक कथ्य | रवींद्र महाजन | 66 |
| 13 | नारी सशक्तीकरण एवं भारतीय परंपरा में स्त्री | अल्पना बिमल अग्रजीत | 74 |


# आनुषंगिक आलेख


| | | | |
|---|---|---|---|
| 1 | अटल जी को श्रद्धांजलि | | 7 |
| 2 | प्राचीन भारत का ज्ञान केंद्र नालंदा | डॉ. विजय भाटकर | 13 |
| 3 | वेद में शूद्र को वेदाध्ययन का समान अधिकार | यजुर्वेद | 13 |
| 4 | धर्मनिरपेक्षता–आत्म निर्वासन की अवस्था | निर्मल वर्मा | 19 |
| 5 | विभिन्न उपासना मार्ग | शिवमहिम्न स्त्रोतम | 20 |
| 6 | सामी संस्कृतिः प्रभु बनाम शैतान | रंगा हरि | 28 |
| 7 | सामी संस्कृति संबंधी शेर | वाजिद हुसैन | 28 |
| 8 | राजनीति के साथ नैतिकता | शंकर शरण | 28 |
| 9 | दूसरे मजहब में रहते हुए भी हिंदू–दृष्टि | विद्यानिवास मिश्र | 44 |
| 10 | हिंदू होने का दायित्व | विद्यानिवास मिश्र | 44 |
| 11 | मध्यकालिक सांस्कृतिक निरंतरता | डॉ विष्णुकांत शास्त्री | 45 |
| 12 | परंपरागत सभ्यता–बोध का बहिष्कार | निर्मल वर्मा | 53 |
| 13 | प्राचीन भारत में शूद्रों की स्थिति | प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा | 62 |
| 14 | प्रकृति पूजक संस्कृति | आशुतोष जोशी | 65 |
| 15 | दैशिक शास्त्र का महत्व | दीनदयाल उपाध्याय | 73 |
| 16 | हिंदुत्व में धर्म | प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा | 73 |

# सम्पादकीय

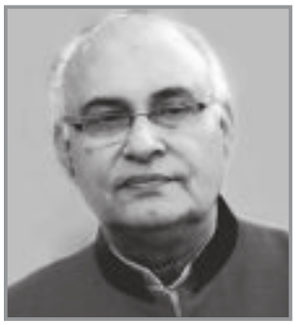

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

अपने भारत की एक दार्शनिक एवं ऐतिहासिक स्थिति है। हम विश्व की प्राचीनतम 'संस्कृति' हैं। लेकिन हमें प्राचीनतम सभ्यता कहा जाता है। यह 'सिविलाइजेशन' का अनुवाद है। भारतीय संदर्भों में जब हम सभ्यता एवं संस्कृति का अन्तर समझने का प्रयत्न करते हैं, तब हम सभ्यता को बाह्याचार एवं संस्कृति को अंतस् प्रेरित कर्म से पहचानते हैं। यह स्थिति हमारी केवल 'सभ्यता' एवं 'संस्कृति' के संदर्भ में ही नहीं वरन् सामान्यतः सम्पूर्ण सामाजिक एवं सार्वजनिक जीवन के संदर्भ में है। हम मौलिक नहीं वरन् अनूदित अवधारणाओं से संचालित हैं।

आज का हमारा अकादमिक विश्व 'पाश्चात्य ज्ञान परम्परा' से शासित है। जिसका अधिष्ठान यूनानी ज्ञान दर्शन है तथा पश्चिम एशिया में उत्पन्न 'शामी संस्कृति' के मजहब हैं। यूरो–अमरीकी अध्येताओं ने इसे विकसित किया है। यूरोपीय साम्राज्यवाद की अनुकूलता के समाजशास्त्र एवं रणनीति का भी इस विकास के साथ घाल–मेल है।

सदियों से उपेक्षा व निष्क्रियता ग्रस्त एवं आक्रांत 'भारतीय ज्ञान परम्परा' का साक्षात्कार करना आज हम भारतीयों के लिये भी कठिन हो गया है। हमारे बौद्धिक–मानस का 'औपनिवेशीकरण' हुआ है। हजार साल के युद्धों एवं गुलामी की स्थिति का यह परिणाम है। लेकिन 'भारतीय ज्ञान परम्परा' हमारे समाज में किसी–न–किसी रूप में अजस्र रही है। वह कभी–कभी हमारी चेतना को झिंझोड़ती भी है।

सन् 2016–17 में दीनदयाल उपाध्याय जन्म शताब्दी के समारोह हुये। मुझे अनेक विश्वविद्यालयों एवं शैक्षिक संस्थानों में जाने का अवसर मिला। दीनदयालजी प्रणीत 'एकात्म मानवदर्शन' के बहाने भारतीय ज्ञान परम्परा की प्रासंगिकता को रेखांकित करने का यह सुअवसर था। अनुभव आया कि हमारे अकादमिक जगत में भी यह बोध जगा है कि हम 'औपनिवेशीकरण' से आक्रांत हुये हैं। अतः 'भारतीय ज्ञान परम्परा' को समझने का रुझान बढ़ा है।

'मंथन' त्रैमासिक एक शोध पत्रिका के नाते इस संदर्भ में अपनी भूमिका निभा सके, इसलिये इस 'भारतीय ज्ञान परम्परा विशेषांक' का संयोजन हो रहा है। विविध प्रज्ञा सम्पन्न विद्वानों का साहचर्य प्राप्त हुआ, संविमर्श का मौका भी मिला। लेकिन विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि हम वहाँ तक पहुँच सके, जहाँ तक इस विशेषांक के माध्यम से हमें पहुँचना चाहिए था।

किसी भी सुनिश्चित तिथि को प्रकाशित होने वाली पत्रिका की एक मर्यादा होती है, उसके पास अनुसंधान का अकूत समय नहीं होता तथा अनुसंधान मूलक विद्वानों का यह स्वभाव होता है कि वे जल्दबाजी में कुछ नहीं लिखना चाहते। परिणामतः कठिनाइयाँ आईं।

'भारतीय ज्ञान परम्परा' एवं 'पाश्चात्य ज्ञान परम्परा' के अन्तर्निहित वैशिष्ट्यों को हम जान सकें। मानवीय ज्ञान की साझेदारी के साथ हम औपनिवेशीकरण की त्रासदी से अपने को मुक्त कर सकें। इसके लिये हमने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति एवं इण्डियन इंस्टीटयूट ऑफ एडवांस स्टडीज के अध्यक्ष, प्रख्यात भारतविद् प्रो. कपिल कपूर से आग्रह किया। वे कृपा पूर्वक मार्गदर्शन के लिये उपलब्ध भी रहे, लेकिन हमें उनके सुदीर्घ पुराने आलेख के अंश को ही इस अंक के लिये सम्पादित करना पड़ा। अच्छा होता हम इस विशेषांक के लिए एक ताजा अनुसंधानपरक आलेख उनसे प्राप्त कर पाते।

'भारतीय ज्ञान परम्परा' का आदि स्रोत तो वैदिक ज्ञान ही हैं। 'धर्म' भारत की मनीषा को व्यक्त करने वाला एक मौलिक तत्व है। कोई संस्कृत का विद्वान ही इस विषय के साथ न्याय कर सकता है। जयपुर स्थित संस्कृत विश्वविद्यालय के सुधि विद्वान श्री अनंत शर्मा से निवेदन किया। संस्कृत के विद्वानों की भाषा एवं लेखन का तेवर अपना ही होता है। उसे वर्तमान पीढ़ी के मुहावरे में ढालना तथा उसका अनुवाद भी करना एक कठिन कार्य है। उनके विद्वतापरक आलेख का हम समुचित सम्पादन नहीं कर सके। विशेषांक इस विषय विवेचन से वंचित रह गया। भारतीय विद्या के निष्णात एवं युग की भाषा में समुचित रूप से स्वयं को व्यक्त करने वाले डॉ. सूर्यकांत बाली से इस संदर्भ में निवेदन किया, लेकिन हमें सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस विशेषांक की यह सबसे बड़ी कमजोरी है।

'पाश्चात्य ज्ञान परम्परा' का आदि स्रोत 'शामी संस्कृति' एवं यूनान का ज्ञान बोध है। 'रिलीजन' की अवधारणा भी वहीं से आयी है। दुर्भाग्य से औपनिवेशिक काल में रिलीजन एवं धर्म की अवधारणा को गड्डम–गड्ड कर दिया गया है। अतः जरूरी था कि 'शामी–संस्कृति' एवं रिलीजन की अवधारणा एवं इतिहास' को हम समझ पाते। इसके लिये निष्णात भारतविद् श्री बनवारी से हमने निवेदन किया। वे अस्वस्थ थे। संदर्भों एवं साक्ष्यों सहित अनुसंधान परक आलेखन एक श्रम साध्य कार्य है, उनका स्वास्थ्य

ऐसा नहीं था, तो भी उन्होंने आलेख लिख कर 'मंथन' को भेजा। विद्वत् मस्तिष्क में तो सभी संदर्भ जीवित रहते हैं, लेकिन आम पाठक संदर्भहीन टिप्पणियों को समझ नहीं पाता। साक्ष्यों के अभाव में गलतफहमी भी पैदा होती है। हमने इस संदर्भ में निवेदन किया। अपने स्वास्थ्य का हवाला देते हुये उन्होंने कहा, यह अभी सम्भव नहीं है। यदि संदर्भों व साक्ष्यों के बिना आप सामान्य आलेख नहीं छापते हैं, तो इसे भी न छापें। एन.सी.ई.आर.टी. के विद्वान लेखक श्री शंकर शरण से भी निवेदन किया गया, लेकिन उन्होंने अपनी व्यस्तता का वास्ता देते हुये, अनुसंधान–परक आलेख लिखने से मना कर दिया। इस महत्वपूर्ण आयाम से भी 'मंथन' का यह विशेषांक वंचित रह गया।

'भारतीय ज्ञान परम्परा' में 'धर्म तत्व' के साथ ही जो गम्भीरतापूर्वक निगड़ित है, वह है 'अध्यात्म' की अवधारणा। इसका विवेचन जरूरी था। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विद्वान सह–सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल जी ने श्रमपूर्वक इस आयाम का आलेखन किया। 'विविध पंथानुगामी भारतीय अध्यात्म' आलेख ने 'मंथन' के इस विशेषांक को समृद्ध किया है।

'भारतीय ज्ञान परम्परा' भारतीय वाङ्मय में संरक्षित है। हालांकि मध्ययुगीन आक्रांताओं ने हमारे बहुत बड़े साहित्य भण्डार को आग के हवाले कर दिया, उसके संरक्षण की जैसी मुस्तैद व्यवस्था होनी चाहिए थी, हम नहीं कर सके। फिर भी जो उपलब्ध है उसको भी आज पढ़ना आसान नहीं है। भारत की लगभग सभी भाषाओं के जानकार बहुभाषाविद् एवं संस्कृत के प्रकांड विद्वान स्व. पं. काशीराम शर्मा जिन्होंने भारतीय संविधान का आधिकारिक संस्कृत अनुवाद किया है तथा डॉ. रघुवीर के शब्दकोष के सम्पादक मंडल में रहे हैं। उनकी एक पुस्तक 'भारतीय वाङ्मय पर दिव्यदृष्टि' की भूमिका को आलेख के रूप में श्री राजीव रंजन गिरि ने सम्पादित किया है। यह आलेख उन उपकरणों का विवेचन करता है, जिनके माध्यम से हम भारतीय वाङ्मय का अध्ययन कर सकते हैं। इस अध्ययन के लिये आवश्यक दिव्यदृष्टि के विवेचक हैं आ. काशीराम जी।

श्री बद्रीसाह टुलधरिया रचित दैशिक शास्त्र; 'भारतीय ज्ञान परम्परा' का युगीन विवेचन है। मुम्बई के श्री रवीन्द्र महाजन ने इस शास्त्र का परिचयात्मक आलेख लिख कर हमें कृतार्थ किया है।

हिन्दू किंवा भारतीय राजनीति की तत्वतः जानकारी जरूरी है। साप्ताहिक 'पांचजन्य' के 'भारतीय ज्ञान परम्परा' विशेषांक से हमने साभार रा.स्व.संघ के वरिष्ठ प्रचारक माननीय रंगा हरि जी का आलेख इस अंक में प्रकाशित किया है। इसके लिये मंथन मा. रंगाहरि जी एवं सम्पादक श्री हितेश शंकर का आभारी है। आज के युग में राजनीति के साथ दूसरा महत्वपूर्ण आयाम है 'अर्थनीति' इसके लिए समुचित आलेखन व्यापक अनुसंधान की मांग करता है। विख्यात विद्वान श्री गुरुमूर्ति से इसके लिये निवेदन किया गया, वे बहुत व्यस्त थे, फिर भी उन्होंने लिखा, आलेख साक्ष्यमूलक उद्धरणों के कारण बहुत लम्बा हो गया। उसको सम्पादित रूप में प्रकाशित करने की अनुमति श्री गुरुमूर्ति से मांगी, उन्होंने मना कर दिया। अतः 'भारतीय चिंतन में अर्थ' शीर्षक आलेख हमने स्वयं दीनदयाल जी की पुस्तक से प्राप्त कर यहाँ प्रकाशित किया है। कोयम्बटूर स्थित अर्थशास्त्र एवं प्रबंधन के विख्यात विद्वान लेखक डॉ. पी. कनकसभापति ने हमें भारतीय स्वभाव के युगीन आर्थिक व्यवहार पर सांगोपांग आलेख भेजा। कृतज्ञता।

भू–सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं एकात्म मानववाद, भारतीय ज्ञान परम्परा के युगानूकूल भाष्य के रूप में दीनदयाल जी ने व्यक्त किये थे। राष्ट्रावधारणा पर शोध–परक मौलिक आलेखन कर इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र के सचिव डॉ. सच्चिदानंद जोशी ने हमें उपकृत किया। 'भारतीय ज्ञान परम्परा' का नवांकुर एकात्म मानववाद' आलेखन मेरे विश्वविद्यालयीन अनुसंधान में से सम्पादित आलेख है।

आज की विश्व मानवता के लिये पर्यावरण का संकट बहुत गम्भीर है। भारतीय प्रज्ञा को इस संदर्भ में जाननेवाले तथा पाश्चात्य विकास मॉडल की मजबूरियों को समझनेवाले विद्वान डॉ. कपिल तिवारी ने, हमारे आग्रह को स्वीकार कर आलेखन किया। उनका यह आलेख पा कर यह विशेषांक निश्चय ही समृद्ध हुआ है।

आलेखीय सामग्री की न्यूनता को मैं क्षमा याचनापूर्वक स्वीकार करता हूँ। हमने प्रयत्न किया है कि इस कमी को कुछ सीमा तक आनुषंगिक आलेखन अर्थात् आप्त पुरुषों के उद्धरणों आदि से पूरा किया जाये। 'मंथन' के पृष्ठों को पलटते हुये आप इस सामग्री को देखेंगे। इस अंक के लिये यह नितांत सार्थक सामग्री है, जो सामान्यतः उद्धरणों के स्वरूप में है। विभिन्न पुस्तकों से इस सामग्री को जुटाया गया है, हम सभी विद्वत् महानुभावों एवं प्रकाशकों के आभारी हैं, जिनसे हमने यह सामग्री प्राप्त की है।

जैसा भी बन पड़ा 'भारतीय ज्ञान परम्परा' का यह विशेषांक आपके हाथों में है। सम्पादकीय टोली ने इसमें मेहनत की है। अनुवाद के कठिन कार्य को भी अंजाम दिया गया है। पिछले कश्मीर विशेषांक भाग एक–भाग दो का प्रभूत स्वागत हुआ है। पाठकों का स्नेह एवं संतोष ही हमारा सम्बल है। अगला अंक 'भारतीय संविधान' विशेषांक होगा। आप अपनी टिप्पणियां एवं सुझाव अवश्य भेजें।

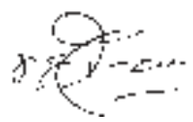

mahesh.chandra.sharma@live.com

भारतीयता के प्रखर एवं मुखर स्वर
भारत रत्न विभूषित

# पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी

को

'मंथन' की श्रद्धांजलि

## ...अमर आग है

**वेद वेद के मंत्र-मंत्र में,**
**मंत्र-मंत्र की पंक्ति-पंक्ति में,**
**पंक्ति-पंक्ति के अक्षर स्वर में,**
**दिव्य ज्ञान आलोक प्रदीपित,**
**सत्यं, शिवं, सुन्दरं शोभित,**
**कपिल, कणाद और जैमिनि की**
**स्वानुभूति का अमर प्रकाशन,**
**विशद-विवेचन, प्रत्यालोचन,**
**ब्रह्म, जगत, माया का दर्शन।**
**कोटि कोटि कंठों में गूँजा**
**जो अति मंगलमय स्वर्गिक स्वर,**
**अमर राग है अमर आग है।**

25 दिसम्बर 1924 — 16 अगस्त 2018

## India's No.1

Commercial Enterprise

## Highest

Highest sales turnover among corporates in India

## Widest

Owns the widest network of crude oil and petro-product pipelines

## Biggest

Owns the biggest network of fuel stations in the country

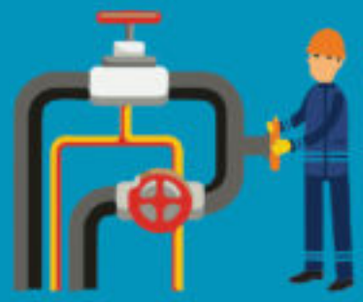

## Tops

Tops Indian Corporates in the prestigious *Fortune* 'Global 500' listing of the world's largest companies

## Most Advanced

Owns the most advanced R&D Centre in the downstream sector

## Largest

Owns the largest combined refining capacity in the country

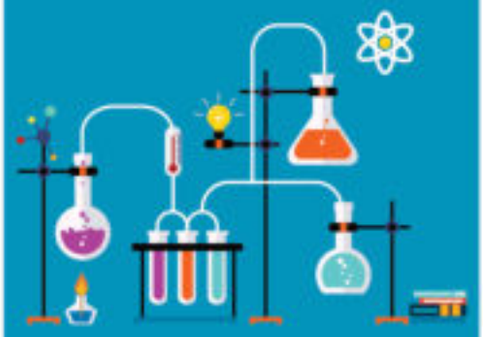

## Most Profitable

India's most profitable public sector enterprise for the year 2016-17

## Leader

Bagged the prestigious Platts Global Energy Award-2017 for Industry Leadership - Downstream

On call

# 33,125 IndianOilPeople

to meet the energy demands in India and beyond

इंडियनऑयल

IndianOil

*The Energy of India*

Follows us On:

/IndianOilCorpLimited /IndianOilcl /IndianOilcorporationlimited /IndianOilcorp

www.iocl.com

## Key Player

in petrochemicals and gas marketing

## Best

Emerged as 'Best PSU Company to work For' in India

पं. काशीराम शर्मा

# भारतीय वाङ्मय बनाम आधुनिक अज्ञानता

विदेशी विद्वानों का सबसे बड़ा यत्न 'भारत राष्ट्र' को नए रूप में परिभाषित करने का रहा। विगत पांच-सात सहस्र वर्षों में भारत राष्ट्र का स्वरूप अतिविशाल था। उत्तर में वंक्षुतट (ओक्सस या आमू दरिया) से लेकर दक्षिण में सिंहल (वर्तमान श्रीलंका) तक और पश्चिम में आर्यान् (ईरान) से लेकर पूर्व में प्राग्ज्योतिष (असम) तक फैला था हमारा भारत राष्ट्र। इसके प्रमाण महाभारत, पुराण, पाणिनि की अष्टाध्यायी, कालिदास के रघुवंश, चंद के पृथ्वीराज रासो, कुंभकर्ण के जयचंद रासो और रतनरासो आदि अनेक ग्रंथों में भरे पड़े हैं

भारतीय वाङ्मय का एक बहुत बड़ा भाग चार महास्तंभों पर आश्रित है। वे हैं: रामायण, महाभारत, पुराण और बड्ढकहा (बृहत्कथा)[1]। सभी भारतीय भाषाओं के रचनाकारों ने आदिकाव्य रामायण, जयकाव्य, महाभारत और पुराणों को अपना उपजीव्य बनाया है। संस्कृत और प्राकृत[2] भाषाओं का पर्याप्त वाङ्मय 'बड्ढ कहा' पर भी आश्रित है। अतः इन चार महास्तंभों का सम्यक् परिचय प्राप्त किए बिना भारतीय वाङ्मय का सुचारु अध्ययन संभव नहीं। इस बात को तो लोग प्रायः स्वीकृत कर लेते हैं कि भारतीय वाङ्मय भवन का बहुत बड़ा भाग इन चार स्तंभों पर टिका है पर ये महास्तंभ किस 'धातु' के बने हैं, यह जानकारी बहुत ही कम लोगों को है। वह धातु क्या है और उसका उद्गम स्थान कहां है?

वेद विश्व के उपलब्ध वाङ्मय के प्राचीनतम प्रतिरूप माने जाते हैं। जेंद अवेस्ता[3] की भाषा भी वैदिक भाषा से बहुत मेल खाती प्रतीत होती है। वैदिक भाषा और अवेस्ती भाषा का यावनी[4] और लातीनी[5] से स्वरूप साम्य देखकर इंग्लैंड से आए शासक वर्ग और ईसाई धर्म-प्रचारक पादरियों को लगा कि इस भाषानिधि का उपयोग भारतीय समाज का, विशेषकर हिंदू समाज का, मन जीतने के लिए किया जा सकता है। ऐसी कहानी गढ़ी जा सकती है जिससे भारत का बहुसंख्यक समाज यह स्वीकार कर लें कि यूरोप का शासक वर्ग तो हमारे ही वर्ग का है।

उसी शासक वर्ग और पादरी वर्ग ने इस्लाम के अनुयायियों को आश्वासन दिलाया कि हम अपने जैसे किताबी मजहब[6] को मानने वालों को इन बुतपरस्त आर्यों के हाथों में सौंपकर नहीं चले जाएंगे जो प्रतिशोध भावना से आकंठ भरे हैं और जिनकी भाषा, संस्कृति, परंपरा सब भिन्न है।

शासक वर्ग का उतना ही प्रबल आश्वासन उन्हीं के द्वारा घोषित 'द्रविड़ समाज' को भी मिला कि जिस अल्प विकसित आर्य-सभ्यता, आर्य-संस्कृति, आर्य-वाङ्मय और आर्य-शासन ने सुविकसित-समुन्नत द्रविड़ सभ्यता-संस्कृति-वाङ्मय को राजदंड के बल पर लील लिया था, उसका समुचित उद्धार हम करेंगे और आर्यदासता की अनंत श्रृंखलाओं से अवश्य मुक्ति दिलाएंगे।

विदेशी शासकों का यह अग्निबाण अपने लक्ष्य का वेधन करने में पूर्णतः सफल रहा। भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व ही यहां का समाज आर्य-द्रविड़-मुण्ड-मंगोल-निषाद, हिंदू-मुसलमान-सिख-ईसाई-बौद्ध-जैन-पारसी, सर्वण-अवर्ण, उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम जैसे अनेक खंडों में मनसा विभक्त हो चुका था। स्वतंत्रता कालीन राजनीति ने इन विभाजक भावनाओं को भरपूर प्रेरणा-प्रोत्साहन दिया है। हमारे मनों में परस्पर संदेह जितना विगत सात दशकों में बढ़ा है उतना तो विदेशी शासनकाल में भी नहीं था।

विदेशी विद्वानों का सबसे बड़ा यत्न 'भारत राष्ट्र' को नए रूप में परिभाषित करने का रहा। विगत पांच-सात सहस्र वर्षों में भारत राष्ट्र का स्वरूप अतिविशाल था। उत्तर में वंक्षुतट (ओक्सस या आमू दरिया) से लेकर दक्षिण में सिंहल (वर्तमान श्रीलंका) तक और पश्चिम में आर्यान् (ईरान) से लेकर पूर्व में प्राग्ज्योतिष[7] (असम) तक फैला था हमारा भारत राष्ट्र। इसके प्रमाण महाभारत, पुराण, पाणिनि की अष्टाध्यायी, कालिदास के रघुवंश, चंद के पृथ्वीराज रासो, कुंभकर्ण के जयचंद रासो और रतनरासो आदि अनेक ग्रंथों में भरे पड़े हैं। महाभारत का धृतराष्ट्र गांधार की राजकन्या से विवाह कर सौ वीर उत्पन्न करता है, गांधारी का भाई शकुनि उस ईरानी पार्वत्य भूमि का राजा है जिसे पाणिनि कुक्कुटागिरि बताता हैं। प्राचीन ईरानी वाङ्मय

जिसे उपरिशयेन (बाज का अड्डा) बताता है, जहां के निवासियों का जातीय चिह्न (टोटेम) 'शकुन्त' होने के कारण गान्धार राजपुत्र 'शकुनि' कहलाता था। पाणिनि के व्याकरण में प्रकण्व (फरगना), दाक्षिकंथा (ताशकंद), वाह लीक (बलख) द्व्यक्षायण (बदख्शां), कुभा (काबुल), ईरान के शकंधु कूप, उसी प्रकार वर्णित हैं जिस प्रकार शाद्वल, नड्वल, सूरमस, अन्तरयन हैं। कालिदास का रघु जहां वंगों, सुह्यों, पाण्ड्यों पर विजय पाता है वहां पश्चिम के पारसीकों और उत्तर के वंक्षुतट को भी नहीं भूलता। फिर किरातों को जीतता हुआ सात पर्वतीय गणों पर विजय पाकर ही प्राग्ज्योतिष पहुंचता है। वे सात पर्वतीय गण हैं यक्ष चिह्न (अक्सैचिन) किन्नर चिह्न (किन्नौर), सिद्ध चिह्न (तिब्बत) गंधर्व चिह्न (नेपाल), विद्याधर चिह्न (सिक्किम), भूत चिह्न (भूतान) और नाग चिह्न (नागालैंड) जातियों के उत्सव संकेतगण। किस जाति का क्या चिह्न (टोटेम) था वह भी नाम में ही निहित था। बारहवीं शताब्दी का कलंकी कहलाने वाला जयचंद दक्षिण में सिंहल पर विजय पाता है तो उत्तर में ईरान–तूरान–बलख–बदख्शां आदि के आठ शाहों पर। हम इन्हें ऐतिहासिक सत्य मानने का आग्रह नहीं करेंगे। हम केवल कवियों की उस भावना को व्यक्त कर रहे हैं जो जनमानस का प्रतिनिधित्व करती थी और अपने आदर्श नायक को तभी चक्रवर्ती मानने को तैयार होती थी जब वह संपूर्ण भारत राष्ट्र का एकछत्र शासक बने।

यदि कोई भारतीय नरेश वास्तविकता के धरातल पर कभी इस विशाल भूमि का शासक नहीं बन सका तो उससे क्या अंतर हो जाएगा, राष्ट्र तो भावना की वस्तु है, वह राज्य का पर्याय कतई नहीं है, सभी राजनीति शास्त्री इस बात को स्वीकार करते हैं। जब मध्यकाल में भारत पांच–सात सौ राज्यों में विभक्त था तब भी क्या देश भर का तीर्थ यात्री चार धामों की यात्रा करके अपने विशाल राष्ट्र की भावना को सुरक्षित नहीं रखे हुए था, क्या देश भर का आठ वर्षीय बालक बिना राष्ट्रीय भावना के ही विकट वनों के मध्य से यात्रा करता हुआ कश्मीर–काशी के विद्या केंद्रों में जाकर अध्ययन करता था? क्या वह शंकर राष्ट्र की भावना से ओत प्रोत नहीं था जिसने केरल में जन्म लेकर भी चौबीस वर्ष की आयु में कश्मीर की शास्त्र भूमि में विजयध्वज आरोपित कर दिया था और बत्तीस वर्ष की छोटी–सी आयु में ब्रह्मलीन होकर भी चार दिशाओं में चार मठ स्थापित करने के अपने कर्तव्य को विस्मृत नहीं किया था।

परंतु विदेशी विद्वानों–इतिहास लेखकों ने राष्ट्र और राज्य को दो पृथक संकल्पनाएं मानते हुए भी भारत राष्ट्र की वे ही सीमाएं बताईं जहां तक उनकी जयजयकार होती थी, जहां तक उनका विजय ध्वज फहराता था। उन्होंने कहा थाः भूल जाओ आश्वकायन, गांधार, शकस्थान, आर्यान्, प्रकण्व और दाक्षिकंथा को, भूल जाओ आश्वकायन की वेदनिर्माण भूमि को, भूल जाओ पाणिनि व्याकरण को, भूल जाओ रघुवंश को, भूल जाओ अशोक के शिलालेखों को, भूल जाओ ईराक तक फैली बुद्धमूर्तियों को जिनके कारण 'बुतपरस्ती' शब्द बना। भूल जाओ तक्षशिला और चरक–सुश्रुत को, भूल जाओ रघु के अश्वों के वंक्षुतीर–विचेष्टन को और हूणावरोधों को। वह सब कभी भारत राष्ट्र नहीं था। उसकी सीमा तो हमने निर्धारित कर दी है। जिस खैबर दर्रे ने अफगानिस्तान पहुंचे हुए अंग्रेज दल के केवल एक अंग्रेज को जीवित भारत पहुंचने दिया, वह भारत का भाग कैसे हो सकता है! वही तो भारत का प्रवेश द्वार है। उसी द्वार से पहले आर्य आए होंगे, फिर शक, सिथियन, हूण, अफगान, तुर्क, मंगोल, गजनवी, गौरी, नादिरशाह, अहमदशाह सभी भारत की अतुल संपदा को लूटने आए होंगे। जो दर्रा मरभुक्खों का प्रवेश द्वार था वह भारत का भाग नहीं था। उसी के कारण तो भारतवासी विदेशियों के गुलाम बने और तब तक बने रहे जब तक उनके दयार्द्र यूरोपीय आर्य भाई उन्हें दास्य मुक्त कराने नहीं आए।

यों अंग्रेज शासकों ने आते ही भारत राष्ट्र को खंडित किया और उसकी सीमा निर्धारित करते हुए सीमा प्रान्त बना दिया। उनके समय का 'भारत राष्ट्र' भी आज अनेक राष्ट्रों में विभक्त है। और हम भाषा में संधि–विभक्ति को भूल कर भी अपने ही देश के नागरिकों के साथ संधियां करने और 'विभक्ति' का अधिकाधिक पाठ पढ़ने को ही नहीं, कार्यान्वित करने को भी उतावले हैं।

विदेशी शासकों ने भाषा–विष का जो बीज बोया था, वह भी आज खूब फलफूल रहा है। एक ओर हम भारत यूरोपीय परिवार के माध्यम से पांच महाद्वीपों के निवासियों के साथ अपना रक्त संबंध मानकर प्रसन्न होते हैं तो दूसरी ओर एक ही खड़ी बोली की दो शैलियों हिंदी और उर्दू को दो भाषाएं ही नहीं, दो वर्गों की आशाओं–आकांक्षाओं की प्रतीक भी मानने को तैयार हैं। उन्हीं की एक अन्य शैली पंजाबी को पृथक भाषा मात्र मानने से संतुष्ट नहीं हैं, एक वर्ग की संपूर्ण आशाओं–आकांक्षाओं का सच्चा प्रतिनिधि मानने को आतुर हैं और उसे कल्पना लोक के भावी राष्ट्र की राष्ट्र भाषा घोषित करने की आकांक्षा पाले हुए हैं। दूसरी ओर, जिन मारवाड़ी और मगही में उतना ही अंतर है जितना पंजाबी और तमिल में उन्हें एक ही हिंदी की बोली मात्र स्वीकार करने को तैयार हैं। यह है उन विदेशी भाषाविदों की स्थापनाओं का प्रभाव जिन्होंने हमारा सर्वविध उद्धार किया!

हम भारत की एकसूत्रता की गाथा कब जानेंगे? 'समास' का पाठ आद्यन्त कब पढेंगे? 'विभक्ति' से बचाने का ही यत्न कब देखेंगे? आश्चर्य इस बात का है कि एक विभक्ति–प्रधान भाषा ने इस देश को एकता के सूत्र में सुदृढ़ता से बांधकर रखा। हमारी आज की निर्विभक्तिक भाषाएं विभक्तिवाद ही पढ़ा रही हैं। जिस भाषा को विदेशी हमारे सिर पर थोप कर चले गए उसमें हमें एकता के सूत्र. दृष्टिगोचर हो रहे हैं और जिसे हमारे देश भर के प्रतिनिधियों ने स्वेच्छा से 'राजभाषा' चुना, उसके 'थोपे' जाने से हम भयाक्रांत हैं और चिंतित हैं कि वह आई और देश पचासों खंडों में विभक्त हुआ। किमाश्चर्यमतः परम्।

जहां हम अंग्रेजी–सती के शव के 'शंकर व्यामोह' को छोड़ने को तैयार नहीं हैं, वहीं हम उस 'संस्कृत से भी रुष्ट हैं जिसने विभक्ति प्रधान होते हुए भी भारत राष्ट्र की विभक्ति का विरोध किया और 'सामासिकता' के गीत गाए। परिणाम आपके सामने है। त्रिभाषा सूत्र में संस्कृत के लिए कोई स्थान नहीं है। जैसी हमारे कर्णधारों की इच्छा! हम 'मृत' भाषा को 'अमृत भाषा' मानकर तीन–हजार वर्ष चिपटे रहे, अब वह भूल

दोहराने को तैयार नहीं हैं। शायद अब हम देश भर के लिए उसी एक मात्र भाषा को चाहते हैं जो विश्व भर में प्रचलित है और जो संसार की सरलतम–समृद्धतम भाषा है! हम उसके समर्थन में आंकड़े भी जुटाते हैं। रोमन में हस्ताक्षर कर सकने की योग्यता रखने वालों को 'अंग्रेजी विद्' मानकर जनगण ना विभाग के प्रतिवेदन को सत्य स्वीकार करते हैं और देश में अंग्रेजी जानने वालों का अनुपात दो–तीन प्रतिशत बता देते हैं। इंग्लैंड का निवासी तो यहां के अंग्रेजी के अध्यापकों को भी अंग्रेजी जानने वाला नहीं मानेगा।

हमें भारतीय वाङ्मय का परिचय देने का यत्न करना होगा, उसके आधारभूत संस्कृत (उदीच्या) के वाङ्मय का परिचय देना होगा और उस प्राचीन वाङ्मय का भी उत्स जो याम्या के उस संघ कालीन वाङ्मय में मौजूद है, ढूँढ़ने का यत्न करना होगा, जिसका विशाल वाङ्मय आज विलुप्त हो चुका है।

संप्रति विश्वभर के उपलब्ध वाङ्मय का प्राचीनतम रूप वैदिक वाङ्मय में मिलता है। उस विशाल संपूर्ण वाङ्मय का शतांश–सहस्रांश भी आज उपलब्ध नहीं है। उसको समझ सकने के लिए छः अंगों का संपूर्ण ज्ञान अपेक्षित अर्हता माना जाता था। पर आज उन अंगों के वाङ्मय की भी नगण्य–सी सामग्री उपलब्ध है। उस सामग्री के बल पर वेदार्थ में प्रवृत्त होना सर्वथा अनाधिकार चेष्टा है। पर खेद तो इस बात का है कि वेदांगों[8] का परिचय देने वालों ने उनका जो स्वरूप और उपयोग बताया है उसे भी तो कोई समझने को तैयार नहीं है।

हम यहां दो वेदांगों की चर्चा करेंगे। एक है निरुक्त[9] और दूसरा है ज्योतिष[10]। निरुक्त के नाम पर एकमात्र यास्क का निरुक्त उपलब्ध है पर उसने एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही है। वह यह कि वेदों में जो कुछ इतिहास (प्रतीक) की शैली में बताया गया है उसका साधारण अभिधा की शैली में उद्घाटन करना निरुक्त का काम है। वेद की 'इतिहास' शैली 'कूट' भाषा है जिसका 'विकूटन' निरुक्त करता है।

एक और वेदांग है ज्योतिष। ज्योतिष वेद का 'नेत्र' माना जाता है। अर्थात् वेद का अर्थ समझना हो, तो ज्योतिष की दृष्टि से समझना होगा। दूसरे शब्दों में वेदों का प्रतिपाद्य है ज्योतिष।

वेंदों को ही नहीं, पांचवें वेद को भी, समझने के लिए ज्योतिष की दृष्टि से अर्थ ग्रहण करना होगा। तभी उसमें निहित ज्ञान स्पष्ट हो पाएगा। ज्योतिष की दृष्टि का ही दूसरा नाम है 'दिव्यदृष्टि'। 'दिव्य' का अर्थ है 'दिव' से संबंधित। 'दिव' का अर्थ है 'आकाश'। 'आकाश' का अर्थ है 'ईषत प्रकाश'। 'दिव्' शब्द 'दीव्' धातु से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है 'चमकना'। 'देव' का अर्थ है तारे जो आकाश में चमकते हैं। कोई अलौकिक शक्ति संपन्न मानवेतर प्राणी देव नहीं होता। वह तो आकाशस्थ ज्योति पिंड ही होता है।

यों वेद गड़रियों के गीत नहीं है, पशु चारण संस्कृति के द्योतक वर्णन नहीं हैं। विदेशी आपको जो कुछ समझाते रहे, आपके मनों में कूट–कूट कर भरते रहे, उसे निकाल दें तो सही काम होगा। हां, छःवेदांगों में से किसी का काम–चलाऊ भी ज्ञान करा सकने वाले ग्रंथ उपलब्ध नहीं हैं। अतः वेदार्थ के चक्कर में न पड़ना ही अच्छा होगा।

हम तो यही निवेदन करेंगे कि पांचों वेदों को 'दिव्य दृष्टि' से देखें। उनमें निहित प्रतीकवाद को समझने का यत्न करें। हमने यथा मति कुछ इतिहासों का अर्थोद्घाटन करने का यत्न किया है। उसे समझेंगे तो जान सकेंगे कि हमारे वाङ्मय के महास्तंभ किस धातु के हैं, किस निर्माण शाला में बने हैं।

हमारे दर्शनों की भाषा काफी दुर्बोध रही। विशेषकर वेदांतियों ने तो सरल से ज्ञान को बहुत ही जटिल बना दिया। उसको सरल–सुबोध रूप में प्रस्तुत करने का यत्न किया गया है। आप सोचते होंगे कि आचार्यों ने दुर्बोध भाषा क्यों प्रयुक्त की। बात यह है कि ज्ञान की सभी शाखाओं के विशेषज्ञ शास्त्रीय भाषा में निरूपण करने के अभ्यस्त हो ही जाते हैं। उनकी भाषा को वे ही समझते हैं। चिकित्सक, विधिविद्, अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक, राजनीतिविद् सभी ने अपनी–अपनी भाषाएं बना रखी हैं। यहां तक कि 'चोरों की फारसी' भी होती है जिसे वे ही लोग समझ सकते हैं।

भारतीय वाङ्मय की एकसूत्रता को समझने के लिए भी 'दिव्यदृष्टि' ही सहायक होगी। ज्ञान गुरु ब्रह्मा सब को 'दिव्यदृष्टि' प्रदान करे–शुभं भवतु सर्वेषाम्। ■

**'भारतीय वाङ्मय पर दिव्यदृष्टि'**
**पृ. 7–12 (साभार)**

**संदर्भ संकेत**

1 *वृहत्कथाः वृहत्कथा के रचनाकार गुणाढ्य माने जाते हैं। यह पैशाची भाषा में रचित काव्य है। इसमें लगभग एक लाख श्लोक हैं। इसमें पांडव वंश के वत्सराज के पुत्र नरवाहनदत्त का चरित वर्णित है। इसका मूल रूप प्राप्त नहीं होता किंतु यह कथासरित्सागर, वृहत्कथामंजरी तथा वृहत्कथालोक संग्रहः आदि संस्कृत ग्रंथों में रूपांतरित रूप में विद्यमान हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि पंचतंत्र, हितोपदेश, वेताल पंचविंषति आदि कथाएं सभवतः इसी से ली गई हैं। ऐसा कहा जाता है कि मूल वृहत्कथा वररुचि ने काणभूति से कही और काणभूति ने गुणाढ्य से। इससे ज्ञात होता है कि यह वररुचि के मस्तिष्क की उपज है, जो उन्होंने संस्कृत में कही थी जिसे काणभूति और गुणाढ्य ने प्राकृत–पैशाची भाषाओं में विस्तारपूर्वक लिखा। महाकवि क्षेमेंद्र ने उसे वृहत्कथा मंजरी नाम से संक्षिप्त रूप से संस्कृत में लिखा। फिर कश्मीर राज अनंतदेव के राज्य–काल में कथा–सरित्सागर की रचना हुई। वररुचि ने इस उपाख्यान माला को संभवतः 350 ईसापूर्व लिखा था। कालांतर में आंध्र–नरपति सातवाहन के राजपंडित गुणाढ्य ने इसे वृहत्कथा नाम से ईसा की पहली शताब्दी में लिखा।*

2 *प्राकृत–भारतीय आर्यभाषा के मध्ययुग में अनेक प्रादेशिक भाषाएं विकसित हुईं, उनका सामान्य नाम प्राकृत है। इन भाषाओं में जो ग्रंथ रचे गए, उन सबको समुच्चय रूप से प्राकृत साहित्य कहा जाता है।*

3 *जेंद अवेस्ताः जिस भाषा में जरथुस्त्र धर्म, पारस ईरान का मूल धर्म, का विशाल साहित्य निर्मित हुआ, उसे अवेस्ता कहते हैं। अवेस्ता या जेंद अवेस्ता नाम से भी धार्मिक भाषा और*

धर्म ग्रंथों का बोध होता है।

4 यावनी– यावनी भाषा से अभिप्राय यवन लोगों की भाषा से है। यवन मुसलमानों को कहते हैं। अरबी और फारसी भाषा यावनी कहलाती है।

5 लातीनी–प्राचीन रोमन साम्राज्य और प्राचीन रोमन धर्म की राजभाषा लातीनी कहलाती है। आज यह एक मृतभाषा है। फिर भी रोमन कैथोलिक चर्च की धर्मभाषा और वेटिकन सिटी शहर की राजभाषा है। यह एक शास्त्रीय भाषा है। इस भाषा से फ्रांसीसी, इतालवी, स्पैनिश, रोमानियाई और पुर्तगाली भाषाओं का उद्गम हुआ है। दिलचस्प तथ्य यह है कि अंग्रेजी भाषा इससे नहीं निकली है। यूरोप में ईसाई धर्म के प्रभुत्व की वजह से लातीनी मध्ययुगीन और पूर्व–आधुनिक कालों में लगभग सारे यूरोप की अंतर्राष्ट्रीय भाषा थी। इसी भाषा में समस्त धर्म, विज्ञान, उच्च साहित्य, दर्शन और गणित की पुस्तकें लिखी जाती थीं।

6 किताबी मजहब–ईसाई और इस्लाम किताबी मजहब कहलाते हैं। इनका जन्म कमशः बाईबिल और कुरान से हुआ है।

7 प्राग ज्योतिष–प्राक् यानी पहले और ज्योतिष यानी प्रकाश। अर्थ हुआ जहां पहले प्रकाश आए। भारत में स्थान सूचक के लिए अर्थ होगा–असम सहित पूर्वोत्तर का क्षेत्र।

8 वेदांग : वेदांग की संख्या छः है। ये निम्नवत हैं–

क शिक्षा–इसमें वेद मंत्रों के उच्चारण की विधि बताई गई है।

ख कल्प–वेदों के किस मंत्र का प्रयोग किस कर्म में करना चाहिए, कल्प में यह बताया गया है। कल्प की तीन शाखाएं हैं–श्रौतसूत्र, गृह्य सूत्र और धर्मसूत्र

ग व्याकरण–इसमें प्रकृति और प्रत्यय आदि के योग से शब्दों की सिद्धि और उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों की स्थिति का बोध होता है।

घ निरुक्त–वेदों में जिन शब्दों का प्रयोग जिन–जिन अर्थों में किया गया है, उनके उन–उन अर्थों का निश्चयात्मक रूप से उल्लेख निरुक्त में किया गया है।

ङ ज्योतिष–इससे वैदिक यज्ञों और अनुष्ठानों का समय ज्ञात होता है। यहां ज्योतिष से मतलब 'वेदांग ज्योतिष' से है।

च छन्द–वेदों में प्रयुक्त गायत्री, उष्णिक आदि छन्दों की रचना का ज्ञान छन्दशास्त्र से होता है।

9 निरुक्तः निरुक्त वैदिक साहित्य के शब्द–व्युत्पत्ति –(etymology)–का विवेचन है। यह हिंदू धर्म के छः वेदांगों में से एक है। इसका अर्थ है व्याख्या, व्युत्पत्ति संबंधी व्याख्या। इसमें मुख्यतः वेदों में आए हुए शब्दों की पुरानी व्युत्पत्ति का विवेचन है। निरुक्त में शब्दों के अर्थ निकालने के लिए छोटे–छोटे सूत्र दिए हुए हैं। इसके साथ ही इसमें कठिन एवं कम प्रयुक्त वैदिक शब्दों का संकलन (glossary) भी है। संस्कृत के प्राचीन वैयाकरण यास्क को इसका जनक माना जाता है। वैदिक शब्दों के दुरूह अर्थ को स्पष्ट करना ही निरुक्त का प्रयोजन है।

10 ज्योतिषः यह वेदों जितना प्राचीन है। प्राचीन काल में ग्रह, नक्षत्र और खगोलीय पिण्डों का अध्ययन करने के विषय को ही ज्योतिष कहा गया था। इसके गणित भाग के बारे में स्पष्टता से कहा जा सकता है कि इसके बारे में वेदों में स्पष्ट गणनाएं दी हुई है। फलित भाग के बारे में बहुत बाद में जानकारी मिलती है। भारतीय आचार्यों द्वारा रचित ज्योतिष की पांडुलिपियों की संख्या लगभग एक लाख से अधिक है। प्राचीन काल में गणित और ज्योतिष समानार्थी माने जाते थे।

# प्राचीन भारत का ज्ञान केंद्र नालंदा

जब भारत विश्व में एक महान सभ्यता के रूप में प्रसिद्ध था, तब जापान से तिब्बत, चीन, कोरिया, मंगोलिया, लाओस, कंबोडिया, इंडोनेशिया और यहां तक कि तुर्की तक से शाही घराने के सदस्य और संन्यासीगण नालंदा आए। पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन में कई लोगों ने स्वीकार किया कि उनके राष्ट्र को नालंदा ने गढ़ा है। जब बैंकाक में नालंदा के बारे में विचार रखा गया, जिसे बुनियादी तौर पर डॉ. एपीजे अब्दुल ने प्रस्तावित किया था, तो 22 देशों ने इसका समर्थन किया। मैं भी उस सपने से जुड़ा हूं। ■

**–डॉ. विजय भाटकर,**

*पांचजन्य, पृ. 47, वर्ष 70 अंक 10, 19 अगस्त, 2018 (साभार)*

# वेद में शूद्र को वेदाध्ययन का समान अधिकार

शूद्र किसी से हेय नहीं है। यह भ्रांति भी निर्मूल है कि वेदों में शूद्र को समान अधिकार नहीं दिए। यथा–

*''यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।*
*ब्रह्मराजन्याज्या शूद्रायचार्याय च स्वाय चारण्याय।*
*प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयज्मे*
*कामः समृद्धतामुपमादो नमतु।।''*

**यजुर्वेद अ. 26 मंत्र 2**

**अर्थः** मैंने (परमात्मा ने) जिस प्रकार यह वेदरूपी वाणी आपको (ऋषियों) को दी है, उसी प्रकार आप सभी इसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र सभी को पढ़ाओ। अपने परिवारों में (स्वाय) अरण्यों (वनों) में रहने वाले (च अरण्याय) आदि सभी को वेद पढ़ाओ। (इस प्रकार वेदाध्ययन किसी के लिए निषिद्ध नहीं था।)

प्रो. कपिल कपूर

# भारतीय ज्ञान परम्परा का वैशिष्ट्य

भारत की विविधतापूर्ण भौगोलिक एवं सामाजिक वास्तविकता ने भारत के मस्तिष्क में यह सर्वोच्च बोध उत्पन्न किया कि सारी सृष्टि एकात्म है, एक अभेद की अवस्था है, इसमें स्वयं एवं अन्य के मध्य विरोध या भेद का अतिक्रमण है। इस 'एकत्व बुद्धि' अर्थात् बौद्धिक संवाद का अर्थ विभिन्न दृष्टिकोणों में पारस्परिक प्रतिवाद नही वरन् एकत्वबुद्धि सर्वदा अविरोधिनी का संधान होता है

भारतीय विचारों ने सत्य की किसी एक ही व्याख्या को स्थापित नहीं किया है, सत्य की व्याख्याओं में ये बहुलता के विश्वासी हैं। सदैव सत्य की उपस्थिति को स्वीकारते हुए भी भारतीय चिंतक उसके मूल्यांकन एवं मान्यता की संभावनाओं के संदर्भ में संशयशील रहे हैं। इसलिए उन्होंने सत्य को प्राप्त करने के लिए पंथों की बहुलता को स्वीकार किया है। इस मूलभूत सिद्धांत में से उपजी यह एक अलग प्रकार की विश्व दृष्टि है, जिससे सत्य को समझा जाता है एवं ज्ञान की मीमांसा होती है। सत्य को समझने के लिए किसी व्यक्ति को सामुदायिक या सांप्रदायिक अधीनता की आवश्यकता नहीं है।[1] भारत की विविधतापूर्ण भौगोलिक एवं सामाजिक वास्तविकता ने भारत के मस्तिष्क में यह सर्वोच्च बोध उत्पन्न किया कि सारी सृष्टि एकात्म है, एक अभेद की अवस्था है, इसमें स्वयं एवं अन्य के मध्य विरोध या भेद का अतिक्रमण है। इस *'एकत्व बुद्धि'* अर्थात् बौद्धिक संवाद का अर्थ विभिन्न दृष्टिकोणों में पारस्परिक प्रतिवाद नहीं वरन् *एकत्वबुद्धि सर्वदा अविरोधिनी* का संधान होता है।[2] इसके आगे, ज्ञान का लक्ष्य मनुष्य की भौतिक सुविधाओं का संवर्धन नहीं है वरन् सबके कल्याण के लिए व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं का विकास करना है। यह वह अवस्था है, जो ज्ञान को अंतिम एवं निर्णायक रूप से व्याख्यायित करती है, भगवान बुद्ध ने इसे 'निर्वाण' कहा है, किसी व्यक्ति विशेष की नहीं वरन् समस्त मनुष्यता की पीड़ाओं का 'निर्वाण'। इस कारण यहां ज्ञान कभी न्याय के प्रतिकूल नहीं होता। वस्तुतः यह नैतिकता से सजा हुआ विचार है, यह धर्म के नैतिक मूल्यों से वर्चस्वित है। यहां 'विद्या' की अर्थात ज्ञान की सभी शाखा–प्रशाखाओं में सामाजिकता एवं नैतिकता की प्रस्थापना होती है।

पश्चिमी ज्ञान परम्परा में ज्ञान सदैव ही निर्मलता एवं निष्कपटता का विपरीत, सत्ता के साथ परस्पर सहभागी तथा मनुष्य को पतनोन्मुख बनाने का माध्यम रहा है।[3] पश्चिमी विचारों के पूरे इतिहास पर दृष्टि डालने पर एक ही विचार का अस्तित्व पूरे इतिहास में प्राप्त होता है तथा वह है मनुष्य केंद्रित विश्व का विचार, अर्थात मनुष्य के हितों के वर्चस्व का विचार। मध्य युग में पश्चिम में मनुष्य की पाप से मुक्ति एवं मनुष्य के हित के उद्देश्य की पूर्ति के लिए परमात्मा उपस्थित है तो वहीं यूरोपीय पुनर्जागरण के उपरांत मनुष्य के हित के उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनका ध्यान प्रकृति की तरफ स्थानांतरित हो गया। एक रोचक तथ्य यह भी है कि पश्चिमी मनुष्य तथा उसके हित के मध्य सदैव ही एक स्पष्ट विरोधात्मक धुरी भी परिलक्षित होती है। अर्थात यह उसी प्रकार हुआ कि मनुष्य को हर क्षण किसी विरोधी या विरोध के होने का आभास होता है या उसके सामने ऐसा कोई न कोई विरोध उपस्थित रहता है, जिसे मनुष्य के हित में या तो नियंत्रित किया जाता है या निष्प्रभावित किया जाता है या फिर प्रयुक्त किया जाता है। जहां मध्य काल में, मनुष्य के साथ इस विरोधात्मक संबंध में परमात्मा ने मनुष्य से अपनी आज्ञाओं का पालन करवाने की चाह लेकर तथा उसे दण्डित करते हुए प्रवेश किया[4], तो वहीं अब प्रकृति विरोधी बन गया है तथा आधुनिक ज्ञान विज्ञान का प्रयोजन मनुष्य हित के लिए प्रकृति को तोड़ना–मरोड़ना हो गया है। पहले मार्क्सवादी युग में मनुष्य या मनुष्य के एक वर्ग का मनुष्य के दूसरे वर्ग के साथ संघर्ष था, तथा अब यह महिला तथा पुरुष के मध्य संघर्ष है। इस संघर्ष मॉडल के लिए स्पष्ट आधार यहूदियत का व्यक्ति आधारित वह विचार है जिसके अनुसार हर वस्तु व्यक्ति की सुख–सुविधा का ही विषय है। यह व्यावहारिक रूप से सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक

# SECL

## Largest Coal Producing Subsidiary of Coal India Ltd.

• Technology • CSR • Environment

## South Eastern Coalfields Limited

**(A Subsidiary of Coal India Limited)**

Seepat Road, Bilaspur - 495006 (C.G.) Tel/Fax : 07752-246338

भारत के समृद्ध भविष्य के लिए

# हरित ऊर्जान्वयन

## पीएफसी – नवीकरणीय ऊर्जा के सशक्त विकास को प्रतिबद्ध

जलवायु परिवर्तन पर इसकी राष्ट्रीय कार्य योजना के अनुरूप, भारत सरकार ने नवीकरणीय ऊर्जा विकास को प्राथमिक रूप से प्रोत्साहित किया है। पीएफसी नवीकरणीय ऊर्जा परियोजनाओं के विकास हेतु अगले पाँच वर्षों के लिए विशेष ब्याज दर पर ₹15,000 करोड़ की वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के लिए वचनबद्ध है। क्योंकि हर हाल में एक स्वच्छ और हरित भविष्य की रचना ही पीएफसी का ध्येय है।

## पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन लिमिटेड

(एक नवरत्न पीएसयू)
पंजीकृत कार्यालय: "ऊर्जानिधि", 1, बाराखम्बा लेन, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110001
फोन: 011-2345 6000; फैक्स: 2341 2545; वेबसाइट: www.pfcindia.com

सशक्त जीवन, सशक्त भारत

/pfcindia पर हमें फॉलो करें

naa

समस्त पश्चिमी वैचारिक संहिताओं को इंगित करता है तथा यह डार्विन के विकास सिद्धांत के मध्य भी उपस्थित है।

संघर्ष के इस मानक में ज्ञान सत्ता पर अधिकार स्थापित करने का एक उपकरण तथा विरोध को कुचलने का एक हथियार है। पश्चिम के प्राचीन विधान में मनुष्य को समुद्र में मछली पर, हवा के प्रवाह पर, तथा पशुओं पर तथा पूरी पृथ्वी पर स्वामित्व दिया गया है।"[5] पश्चिमी मनुष्य ने इस स्वामित्व को स्वीकार किया उस अधिकार को अपने वर्चस्व का विस्तार करने के स्थायी हथियार के रूप में देखा है। इसलिए यूरोपीय पुनर्जागरण में, ज्ञान की पूरी परियोजना को मनुष्य के तथाकथित हित की तरफ मोड़ दिया गया, एक सुख सुविधा पूर्ण जीवन हासिल करने का उद्देश्य, जो उसे परमात्मा से जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में प्राप्त हुआ था। यह अनुभवजन्य विज्ञान के विस्तार से पूर्व विज्ञान के उदय तथा ईसाई सत्ता मीमांसा के पतन को बताता है। जिसने ईसाई मत को निःशक्त किया तथा यह उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी ईसाई पंथ के लिए इस प्रकार के बौद्धिक तथा आध्यात्मिक परिणामों के साथ धर्मतंत्र के विध्वंस का कारण बना।

ज्ञान के इस आयाम में ज्ञान का क्रियान्वयन बाह्य कारकों के द्वारा होता है। ज्ञान का निर्माण दूसरों के माध्यम से प्राप्त अनुभवों के आधार पर स्थापित उन बाह्य शिक्षाओं पर केंद्रित होता है, जिनके पास या तो सामाजिक अधिकार होता है या उन्होंने सामाजिक अधिकार को हासिल किया होता है'। मनुष्य मात्र परोक्ष प्राप्तकर्ता एवं उपयोगकर्ता है। पश्चिमी ज्ञान की शक्ति का सार व्यक्तियों पर थोपे जाने वाले नियंत्रण तथा उनसे जबरन प्राप्त अनुकूलता में समाहित है। जैसा पश्चिमी इतिहास प्रदर्शित भी करता है कि इस प्रकार के आयोजित ज्ञान का अंत अंततः विध्वंसक ही प्रमाणित हुआ है। इसकी शक्ति सामाजिक तथा संस्थानिक समर्थन से प्राप्त किए गए सत्य के अधिकार में रहती है। पश्चिमी इतिहास में एक नियत समय में उस समय का एक ही वर्चस्ववादी सत्य होता है। यह यहूदी सिद्धांतों के ही परिणामस्वरूप है कि 'मनुष्य' मनुष्यतावादी चरण में, फिर भाषा तथा अब आकर विज्ञान इस सत्य के रूप में प्रकट हुआ है। पश्चिमी विचार में एक अद्वैत सिद्धांत है एक समय में एक ही सत्य। इस द्विविभाजन में, मात्र एक ही सत्य है जिसे पहचानकर उसका अनुपालन पूरी निष्ठा से किया जाना चाहिए। यह आज्ञात्मक निर्देश यहूदी विश्वविचार के मताग्रही अद्वैतवाद के द्वारा संचालित है।[6] संक्षेप में पश्चिम में ज्ञान का लक्ष्य मात्र सत्ता को प्राप्त कर उसका क्रियान्वयन है। ज्ञान का यह स्वरुप आनंददायी न होकर लक्ष्य के पतन एवं अंततः स्वतंत्रता के हनन तक ही सीमित हो जाता है। इसकी श्रेणियों (विशेषकर तत्वमीमांसा) का गठन प्रायः भाषाई रूप में होता है, परन्तु इसे एक वैधता के माध्यम से कुछ मूल्य प्रदान किए जाते हैं, जो इन

*आदि शंकराचार्य अपने शिष्यों के साथ ( राजा रवि वर्मा द्वारा बनाई पेंटिंग 1904 में)*

**भारतीय विचार प्रणाली में, ज्ञान का उद्देश्य दूसरों पर शक्ति का प्रदर्शन न होकर मोक्ष रहा है, अपनी सीमाओं से स्वयं को मुक्त कर लेना। विचारों की यह दिशा पश्चिमी संरचना में उपस्थित विचारों से एकदम विपरीत है**

श्रेणियों में अनुभवजन्य न होकर बाह्य रूप से थोपे हुए होते हैं। यह मूल्य उन मूल्यों के ज्ञाता रहे मनुष्यों से प्राप्त होते हैं। यह वैधता प्रायः किसी मुख्य मत प्रणाली, एक मुख्य अवधारणा से आती है, जैसे धर्म या विज्ञान या सौंदर्यशास्त्र या नीतिशास्त्र। इस संरचना में मनुष्य की न ही तो कोई भूमिका होती है तथा न ही कोई स्वतंत्रता (विचारों की इन श्रेणियों की प्रमाणिकता का स्वयं मूल्यांकन करने के लिए) क्योंकि वह सामाजिक रूप से अनुभव किए हुए, थोपे हुए मत के अधीन होता है।

भारतीय विचार प्रणाली में, ज्ञान का उद्देश्य दूसरों पर शक्ति का प्रदर्शन न होकर मोक्ष रहा है, अपनी सीमाओं से स्वयं को मुक्त कर लेना। विचारों की यह दिशा पश्चिमी संरचना में उपस्थित विचारों से एकदम विपरीत है। यह संचलन मनुष्य से सामूहिकता की तरफ है; न कि एक शोषण या तनाव के संबंध में समाज से मनुष्य की तरफ। यह भी ध्यान दिया जाए कि जहाँ, पश्चिमी संरचना में ज्ञान का उद्देश्य मनुष्य पर सत्ता हासिल करना, उसे बाँधना तथा उसके मस्तिष्क पर अपने विचारों की विजय पाना है, तो वहीं भारतीय संरचना में ज्ञान, एक माध्यम है मनुष्य की मुक्ति का। यह न केवल एक सामूहिक संहिता की बाहरी सामाजिक, आडम्बरी बाधाओं से मनुष्य की मुक्ति का माध्यम है बल्कि यह माध्यम है मनुष्य का अपने मस्तिष्क तथा स्वयं के अस्तित्वगत, आतंरिक अवरोधों से मुक्ति प्राप्त करने का। भारतीय ज्ञान परम्परा में ज्ञान का लक्ष्य बहुत ही अलग है, यह मनुष्य की मुक्ति को प्रेरित करना है।

हमारे विचारों में मनुष्य की स्वतंत्रता का निर्माण कौन करता है, यह भी स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिए। भारतीय ज्ञान प्रणाली, विशेष रूप से सांख्य, मोक्ष को दुःख, आत्म पीड़ा से मुक्ति बताती है। क्या यह सामाजिक कल्याण की कीमत पर मात्र मनुष्यगत मोक्ष तथा निर्वाण है? नहीं, क्योंकि ज्ञान के प्रश्न पर चर्चा हमेशा ही उस नीतिगत संरचना में ही हुई है।[7] जिसे विचारों की सभी प्रणालियों द्वारा स्वीकृत किया जाता है। यह अत्यंत व्यापक रूप से प्रयुक्त की जाने वाली अवधारणात्मक संरचना है, तथा यह अवधारणात्मक संरचना

**महान विद्वान् आदि शंकराचार्य भी विविध बौद्धिक शिक्षाओं के रचयिता होने के साथ-साथ एक प्रवचनकर्ता थे, एक लोकप्रिय संत, जिन्होंने पूरे भारत में उत्तर से लेकर दक्षिण तथा पूर्व से लेकर पश्चिम तक पैदल यात्रा की तथा गाँव-गाँव घूमकर लोगों को अद्वैत वेदान्त की शिक्षा दी**

प्रायः समस्त भारतीय भाषाओं के सामान्य वक्ताओं की भाषा में उपस्थित होती है। यह सभी मानवीय प्रयास के लक्ष्यों–प्रसन्नता या पीड़ा को अनदेखा करने का संज्ञान लेती है। इन लक्ष्यों के दो छोरों में अर्थ तथा काम की सांसारिक लिप्साएं हैं, तथा अधिकांश जीवन इन्हीं दो में प्रतिबंधित होकर रह जाते हैं। परंतु इस संरचना में ये छोर धर्म तथा मोक्ष के दो नीतिगत निर्देशों से घिरे हैं। यदि ये दो कोष्ठक अनुपस्थित हैं या हटा दिए जाते हैं, तो जीवन इच्छाओं की सांसारिक तलाश बन जाता है तथा इसका अंत विफलता या निराशा हो सकता है।

परंतु सम्पूर्ण रूप से यह नीतिगत संरचना मनुष्य तथा समाज के मध्य एक सातत्य की स्थापना करती है। सच्ची मनुष्यगत मुक्ति या स्वतंत्रता के लिए, मोक्ष ही एकमात्र लक्ष्य है, तो मनुष्य को अपने मोक्ष की तलाश करनी चाहिए। परन्तु मोक्ष का माध्यम ज्ञान है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि किस प्रकार का ज्ञान? वह ज्ञान जो धर्म को प्रोत्साहित करता है, जिसे महाभारत में मनुष्य कल्याण को प्रोत्साहित करने के रूप में परिभाषित किया गया है। तो मनुष्य को वह ज्ञान चाहिए, जो भगवत गीता के अनुसार लोक–संग्रह अर्थात सामूहिक कल्याण का ज्ञान है।[8] धर्म के द्वारा दिया गया ज्ञान मनुष्य तथा समाज को आपस में बांधकर रखता है।

धर्म के माध्यम से दिया जाने वाला ज्ञान निस्संदेह ही पश्चिम के ज्ञान के उस प्रतिमान से पूर्णतया भिन्न है जिसमें ज्ञान को सत्ता का माध्यम बताया गया है। भारतीय परम्परा में ज्ञान मात्र सूचना का पर्याय नहीं है, यह अपने स्रोत का संकेतक नहीं है तथा यह मनुष्य की सुख सुविधा को प्रोत्साहित करने के लिए कोई माध्यम नहीं है तथा न ही यह मनुष्य की प्रकृति पर एवं दूसरे मनुष्यों पर विजय पाने के लिए एक सत्ता प्रक्रिया है। यह ज्ञान कभी न क्षरण होने वाले शाश्वत सत्य का ज्ञान है, जिसका अर्थ है एक मनुष्य होना, एक अच्छा मनुष्य होना, एक ज्ञान जो मनुष्य होने की शर्त की प्रकृति पर एक सघन ध्यान में गहरा दबा है, वह ज्ञान, जो मनुष्य की क्षुद्र सुख सुविधाओं से परे आतंरिक उल्लास को प्रोत्साहित करता है तथा वह ज्ञान जो मनुष्य को दूसरों की स्वतंत्रता को सीमित करने के स्थान पर स्वयं को क्षुद्र एवं संकुचित सीमाओं से मुक्त करता है।

यह भी ध्यान दिया जाए, कि जहां तक भारत के विषय में यह प्रचलित है कि ज्ञान यहाँ पर कुछ ही लोगों के हाथ में रहा, तो यह पूर्णतया मिथक है। भारत में ज्ञान कभी भी कुछ लोगों के हाथ में कभी भी नहीं रहा है तथा न ही है। भारत में एक सुचिंतित तथा शिक्षित ज्ञान परम्परा के साथ, शिक्षाओं को दोहराने तथा उनकी व्याख्या की भी एक समानांतर परम्परा रही है तथा वह है कथा–प्रवचन परम्परा, जिसने विद्वजनों की शिक्षाओं को आमजनों तक पहुंचाया है। महान विद्वान् आदि शंकराचार्य भी विविध बौद्धिक शिक्षाओं के रचयिता होने के साथ साथ एक प्रवचनकर्ता थे, एक लोकप्रिय संत, जिन्होनें पूरे भारत में उत्तर से लेकर दक्षिण तथा पूर्व से लेकर पश्चिम तक पैदल यात्रा की तथा गाँव–गाँव घूमकर लोगों को अद्वैत वेदान्त की शिक्षा दी।[9] इसी प्रकार श्री रामानुजाचार्य ने भी तमिल भाषा में अपनी विशिष्टाद्वैत दर्शन की शिक्षा मैसूर के निकट मेलकोट गाँव में दी। तो यह बहुत ही स्पष्ट रूप से माना जा सकता है कि कई महान एवं प्रबुद्ध समीक्षाएं ऐसे ही लोकप्रिय प्रतिपादनों से उत्पन्न हुई हैं।

यह उस चित्रण तथा समतुल्यता, उपमा तथा द्रष्टान्त की उपस्थिति की व्याख्या करता है, जिसे मनुष्य के सामान्य दैनिक जीवन की गतिविधि से उधार लिया जाता है, तथा

यह आभूषण से लेकर भोजन, पारिवारिक संबंध तथा दायित्वों के संसार तक कुछ भी हो सकता है। यहाँ तक कि भारतीय तर्क में पांच चरणीय न्यायवाक्य, उदाहरणम, में तीसरा चरण, वास्तविक जीवन उदाहरण है जो तर्क तथा जीवन को एक साथ बांधता है तथा यह भारतीय व्यावहारिक संरचना एवं प्रमाण की व्यावहारिक अवधारणा की विशेषता है।" दो समानांतर परम्पराएं इस प्रकार बहुत ही नज़दीकी से एक दूसरे के साथ संबद्ध हैं, वे पारस्परिक रूप से एक दूसरे को समृद्ध कर रही हैं तथा संक्षिप्त व्याख्या, व्याख्या, सत्यापन, मिथ्याकरण एवं चित्रण आदि की प्रक्रियाओं के माध्यम से विचारों के विकास में समान रूप से आवश्यक रूप से योगदान कर रही हैं। प्रचलित मिथक के विपरीत भारत में ज्ञान कभी भी मुट्ठी भर लोगों का विशेषाधिकार नहीं रहा है तथा न ही यह मुट्ठी भर लोगों के हाथों में रहा है।

इस बात का निश्चित प्रमाण कि ज्ञान को न ही कुछ कुलीन मनुष्यों के हाथों का खिलौना बनाया जा सकता है तथा न ही यह कुलीनों के कब्ज़े में रहा है, इस तथ्य से प्राप्त हो जाता है कि भारतीय विचारों की शब्दावली भारत के सामान्य जन की भाषा में रही है। तथा कई शब्द जैसे जड़, चेतन, जीव, आत्मा, संसार, ध्यान, क्षमा, दया, मैत्री, अनु, ज्ञान, ज्ञानी, चित्त, बुद्धि, प्रत्यक्ष, आदि जो आज भी हम प्रयोग में लाते हैं, वह सभी भाषाओं में सहज तथा साधारण शब्द हैं। यह तथ्य मात्र दर्शन में ही नहीं बल्कि तकनीकी शब्द जैसे संज–अस, जैसे वृद्धि, जैसे व्याकरण का गुण भी लगभग सभी भारतीय भाषाओं में समान रूप से बोले जाते हैं। यहाँ तक कि अवधारणात्मक कहावतें भी लोगों की साधारण सोच का हिस्सा रही हैं।

यह केवल उपस्थित होने का ही प्रश्न नहीं है बल्कि यह विचारों के भी अभी तक जीवित होने की बात है। यह उस बात का भी उदाहरण है जिसे भारत में विचारों का सच्चा लोकतंत्रीकरण कहा जा सकता है। इस लोकतंत्र ने ज्ञान को भारत में एक सभ्यतात्मक मूल्य बनाया है। ■

*kkapoor40@yahoo.com*
संपर्क–9810202146

**संदर्भ संकेत**

1 *इस प्रकार महाभारत के युद्ध को लड़ने की आवश्यकता से संबंधित सभी पहलुओं की व्याख्या करने के बाद, सामाजिक विचारों के प्रस्तुतीकरण के उपरान्त, मनुष्य तर्क कर सकता है कि कृष्ण ने अर्जुन पर अंतिम निर्णय छोड़ दिया था। देखें, श्रीमद्भगवतगीता, 18.63*
2 *देखें–भतृहरि की वाक्यपदीय, I.9*
3 *भारतीय परम्परा में ज्ञान, व्यक्तिगत और सामाजिक, सैनी मेमोरियल फाउंडेशन व्याख्यान, पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़। 2002 (मोनोग्राफ)*
4 *ओल्ड टेस्टामेंट, ड्यूटेरोनामी 4.10.43*
5 *जेनेसिस 1.26*
6 *उत्तर आधुनिकता में यह तर्क है कि कोई भी एक सत्य नहीं है या सत्य है ही नहीं। बहुलता को लेकर एक बहस होती है तथा हिंदू अवधारणा के साथ व्यापक मात्रा में अनुकूलन है।*
7 *धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष, तथा इन सबसे मुक्त होना। मूल्यों की तरफ उत्तर आधुनिकता को यहाँ पर देखा जा सकता है।*
8 *भगवत गीता*
9 *शारदा पीठ, श्रृंगेरी के शंकराचार्य के साथ व्यक्तिगत वार्तालाप में यह पुष्टि हुई कि सातवीं शताब्दी में भी संस्कृत भारतीय भाषाओं में सबसे अधिक समझी जाने वाली भाषा थी।*

# धर्मनिरपेक्षता–आत्मनिर्वासन की अवस्था

कहना न होगा कि पिछले 50 वर्षों में धर्मनिरपेक्षता या सेक्यूलरिज्म का संबंध धर्म की इस दूसरी अवधारणा से संबंधित था। उस अवधारणा से नहीं जो भारतीय संभ्यता के केंद्र में थी। यह एक ऐतिहासिक विडंबना ही मानी जाएगी कि हमारे सत्ता गुरु शासकों ने स्वतंत्रता के बाद भारतीय जनसाधारण को एक ऐसे धर्म से निरपेक्ष होने के लिए बाध्य किया जिसका उनसे कोई लेना देना नहीं था और इस प्रक्रिया में उन्हें एक ऐसी सेक्यूलर समाज–व्यवस्था में रहने के लिए विवश किया जहां स्वयं उनकी धार्मिक आस्थाएं एक हाशिए की चीज बनकर रह गईं। धर्म–निरपेक्षता इस अर्थ में एक भारतीय के लिए आत्मनिर्वासन की अवस्था बनकर रह गई। ■

**–निर्मल वर्मा**
*hindisamay.com*
*'धर्म और धर्म निरपेक्षता' निबंध से (साभार)*

# विभिन्न उपासना मार्ग

*रुचीनां वैचित्र्यादृजु कुटिलनानापथजुषां।*
*नृणामेको गम्यस्त्यवमसि पयसामर्णव इव।।*

**श्री पुष्पदंत रचित शिवमहिम्न स्त्रोतम**
**श्लोक–7**

अर्थात अपनी भिन्न–भिन्न रुचि के अनुसार भिन्न–भिन्न उपासना मार्गों पर श्रद्धापूर्वक चलते हुए सभी साधक, हे प्रभु तुम तक उसी प्रकार पहुंचेंगे, जिस प्रकार उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम किसी भी दिशा की ओर अत्यंत टेढ़े–मेढ़े मार्गों से बहने वाली सभी नदियां समुद्र तक पहुंचती ही हैं। ■

रंगा हरि

# भारतीय राजनीति की संकल्पना

ऐतरेय ब्राह्मण में विविध शासन-प्रणालियों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, साथ ही इनके शासकों के नाम भी दिए गए हैं। यह भी उल्लेख है कि ये प्रणालियां कहां प्रचलित थीं।

*ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं माहाराज्यमाधिपत्यमयं संमतपर्यायी स्यात्सार्वभौमः सार्वायुष आंतादापरार्धात्पृथिव्यै समुद्रपर्यताया एकराडिति।।3।।*
*तदप्येशः श्लोकोऽभिगीतो। मरूतः परिवेष्टारो मरूत्तस्यावसन् गृहे।*
*आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वे देवाः सभासद इति।।4।।*

ऐतरेय ब्राह्मण की अष्टम पंचिका

वर्तमान विश्व में जहां करीब 200 स्वतंत्र संप्रभुता संपन्न राष्ट्र हैं, गत सदियों के खट्टे-मीठे अनुभवों से उभरी राजनीति एक सामाजिक विज्ञान के नाते अध्ययन के विषय का आकार लेकर मानवी मस्तिष्क के सामने खड़ी है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्राचीन राजनीति व अर्वाचीन राजनीति, इन दोनों का तुलनात्मक विवेचन मानवी प्रगति के लिए आवश्यक है। इस दृष्टि से भी 'हिंदू राजनीति' पर फोकस करना उचित होगा

हिंदू राजनीति–विषय वर्तमान वातावरण में सांप्रदायिक–सा लगेगा। परंतु थोड़ी गहराई में जाकर सोंचेंगे तो आसानी से मन को लगेगा कि विषय गहरा है, अनुसंधान का है, इतिहास की दृष्टि से महत्व का है, विश्व के प्रचीनतम राष्ट्र के राजनीतिक जीवन से संबंधित है। इतिहास कहता है कि रामायण काल से हर्षवर्धन काल तक यानी प्राक्–इस्लामी आक्रमण के पूर्व भारत में अनेक साम्राज्यों की स्थापना हुई। भारत में राजा शासित राज्य, गणतंत्र, पंचायती शासन आदि विद्यमान थे। हवा में, ठोस आधार के बिना इतना कामयाब होना संभव नहीं, जैसे–दीवार या पट के बिना चित्र लेखन संभव नहीं। और एक महत्व की बात है।

वर्तमान विश्व में जहां करीब 200 स्वतंत्र संप्रभुता संपन्न राष्ट्र हैं, गत सदियों के खट्टे–मीठे अनुभवों से उभरी राजनीति एक सामाजिक विज्ञान के नाते अध्ययन के विषय का आकार लेकर मानवी मस्तिष्क के सामने खड़ी है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्राचीन राजनीति व अर्वाचीन राजनीति, इन दोनों का तुलनात्मक विवेचन मानवी प्रगति के लिए आवश्यक है। इस दृष्टि से भी 'हिंदू राजनीति' पर फोकस करना उचित होगा। संक्षेप में, विषय पूर्वाग्रह से टालने का नहीं पर खुली आंख से, खुले मन से अवगत करने का है और बौद्धिक सच्चाई से समझने का है।

## पुराने प्रयास

आज हम सब हिंदू राजनीति के विषय पर चिंतन कर रहे हैं। यही है, उस दिशा में पहला प्रयास, ऐसा हम न सोंचे। इससे पूर्व भी प्रयास हो चुके हैं। बहुत लोग जानते होंगे कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही 'हिंदू पॉलिटी' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। वह विद्वान जायसवाल जी द्वारा लिखित थी।[1] उसी प्रकार ऋषि अरविंद की लिखी 'स्पिरिट एंड फॉर्म ऑफ इंडियन पॉलिटी' है।[2] तिरुवनंतपुरम् के पांडुलिपि संग्रहालय से प्राप्त आर्य चाणक्य का ग्रंथ भी 20वीं सदी के पूर्वार्ध में प्रकाशित हो चुका था। हर्ष देने वाली बात यह थी कि हमारे देश के कुशाग्र मनीषियों ने 19वीं सदी से ही भारतीय स्वत्व या अस्मिता की खोज शुरू की थी। उस उत्साहमय वातावरण में सनातन राष्ट्र भारत की जड़ों की अन्वेषणा हुई। किसी ने 'अ हिस्टी ऑफ हिंदू केमिस्ट्री'[3] लिखी और किसी ने 'फंडामेंटल यूनिटी ऑफ इंडिया' लिखी।[4] इस प्रकार के अनेक ग्रंथ उन दिनों प्रकाशित हुए थे, जो भारत की अस्मिता के परिचायक थे। विशेषतः बंगाल व महाराष्ट्र के प्रखर चिंतक और गवेषक उस दिशा के अग्रणी थे।

## मंद गति

बाद में न जाने क्यों, दुर्दैव से वह जोश मंद पड़ा और केवल धार्मिक–आध्यात्मिक क्षेत्र तक सीमित रहा। इस धुंधले अंतराल में पश्चिमी विचारधाराएं

अपने बुद्धिजीवियों के अंदर घुसती रहीं। फलस्वरूप धर्म और अध्यात्म के अलावा अन्य भारतीय मानविकी के अज्ञानी रहे। उस समय काशी हिंदू विश्वविद्यालय ने ही अपवाद के नाते इस दिशा में प्रयास चलायमान रखा। स्वतंत्रता प्राप्त होने के दशकों बाद अब इस ज्ञान शाखा की ओर फिर से भारतीय मन जाग्रत हो रहा है। केवल भारत की खोज से भारत संतुष्ट नहीं। वह भारत की आत्मा की खोज का आग्रही है। आत्मविस्मृति से आत्मजागृति की ओर बढ़ने की उसकी लालसा है। काल चेतना की उस उत्प्रेरणा का फल है यह हिंदू राजनीति की खोज।

## वेदों में राजनीति और राष्ट्र

हिंदुओं के सामाजिक जीवन का वर्णन हमें वेदों में मिलता है। द्यूत के खेल से लेकर अध्यात्म तक वह सर्वस्पर्शी है। अतः उसमें राजनैतिक संकल्पनाएं भी दृश्यमान हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वेद राजनैतिक हैं। वेदमूर्ति पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने वेदों में दृष्टिगत राष्ट्र, राज्य व राजनीति संबंधित अवधारणाओं के बारे में गहरा अध्ययन किया है। उनकी पुस्तकें हिंदी और मराठी भाषा में उपलब्ध हैं। सातवलेकर जी प्रत्येक ऋचा का संदर्भ देकर विषयों का निःशंक प्रतिपादन करते हैं। 'वैदिक राष्ट्रगीत', 'वैदिक राज्यशासन', 'वैदिक सैन्य व्यवस्था', 'वैदिक अर्थव्यवस्था', 'वैदिक समाजवाद', 'वैदिक स्वराज', 'ऋषियों के तप से राष्ट्र का निर्माण' इत्यादि विषय के ग्रंथ बहुत चर्चित हैं। 'मातृभूमि और स्वराज्य शासन' उनका एक अलग ग्रंथ है। इसमें विदेशी विचारक का एक भी उद्धरण नहीं है। अर्थात शत–प्रतिशत वेद आधारित प्रस्तुतीकरण। पंडित सातवलेकर वेद आधारित हिंदू राजनीति के संभवतः 20वीं शती के अग्रणी अध्येता हैं। अतः उस विषय की विस्तृत खोज के लिए वे योग्य मार्गदर्शक बन जाते हैं। उस दृष्टि से उनका साहित्य विशेष पठनीय है।

मैं यहां उनके कहे केवल तीन शब्दों का उल्लेख करूंगा–एक है 'वैराज्यं'। वह राजा विहीन राज्य, वहां स्वयं धर्म शासक है। उसी के बारे में पितामह भीष्म ने कहा है कि 'धर्मेणैव प्रजा सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परं।' दूसरा शब्द है 'बहुपाय्य स्वराज्य।' ऋग्वेद की ऋचा का उल्लेख वे करते हैं 'व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये।'[5] वह है बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय राज्य, जहां सबके योगक्षेम का निर्वहन होता है। तीसरा शब्द हैं 'मम सत्यं' युद्ध। इसका अर्थ है कट्टरवादिता की जंग। मैं जो कहता हूं वही सत्य है और तुम्हारी कहनी यहां नहीं चलेगी, उसके लिए रक्तपात। वही है 'मम सत्यं' युद्ध। आज उसका नाम है फंडामेंटलिस्ट वार, जिसका सीधा उदाहरण है सीरिया, इस्लामिक स्टेट का आतंक और जंग। ईसाई पोप के उत्तेजित मध्ययुगीन सारे जिहाद 'मम सत्यं' युद्ध थे। अरब प्रांतों के, पैगम्बर मुहम्मद के सारे युद्ध 'मम सत्य' युद्ध थे। वैदिक महर्षि का कहना है कि जब तक विश्व में वैचारिक व व्यावहारिक असहिष्णुता, अनुदारता और धृष्टता रहेगी तब तक 'मम सत्यं' युद्ध की संभावना रहेगी। उसका हल 'बहुपाय स्वराज्य' है जहां समन्वय, सामंजस्य, समवाय और सहचित्तता का मधुमय वातावरण अपने आप विकसित होगा और सहकारिता एवं सहवर्तिता जनजीवन का ताना–बाना बन जाएगी।

## वाल्मीकि रामायण में राष्ट्र मीमांसा

महर्षि वाल्मीकि की रामायण में भी राजनीति संबंधित वर्णन पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। रामायण की कथा में तीन सभ्यताएं दिखाई पड़ती हैं–अयोध्या सभ्यता, किष्किंधा सभ्यता व लंका सभ्यता। तीनों की राजनैतिक संकल्पनाओं में समता एवं विषमता दोनों दिखाई देती हैं। समता की बात, उदाहरण की दृष्टि से 'लंका में बंदी बनाए हनुमानजी दूसरे राज के दूत होने के कारण बध्य नहीं हो सकते'–यह था विभीषण का प्रस्ताव और उससे रावण सहित सारे सभासद भी सहमत थे। यह है एक राजनैतिक मूलभूत तत्व जो सर्वप्रथम, मानवीय इतिहास की दृष्टि से रामायण में घोषित हुआ। 21वीं सदी में भी सभी राष्ट्र इस तत्व का उल्लंघन नहीं करते हैं।

## अयोध्या सभ्यता की बात

जब चित्रकूट में श्रीराम–भरत मिलन होता है तब श्रीराम भरत से पूछताछ करते हैं। वह पूरी पूछताछ असल में श्रीराम का भरत को प्रशासनिक उपदेश है। राजनैतिक मीमांसा की दृष्टि से अयोध्याकाण्ड का 100वां सर्ग अत्यंत महत्व का है। 76 श्लोक के इस सर्ग में प्रभु रामचंद्र भ्राता भरत को प्रश्नों के रूप में आदर्श प्रशासन के बारे में सचेत करते हैं। उनके उपदेश के बिंदु हैं–सीमा सुरक्षा, आंतरिक सुरक्षा, वेतन व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, प्रजा का स्वास्थ्य, अमात्यों का स्तर, शासक गण की सजगता, प्रजा की धर्म तत्परता, जीवन शुचिता, सैनिक प्रबलता, दुर्ग व्यवस्था आदि। अंततः संक्षेप में वे कहते हैं, जो राजा इस प्रकार बुद्धि मत्ता, न्यायबोध और धर्मभाव से प्रजा का पालन पोषण करता है वह विशाल पृथ्वी का अधिकारी बन सकता है और वह मृत्योपरांत स्वर्ग को प्राप्त करेगा।[6]

अयोध्या से हम लंका में चलें। वहां का हनुमान का अनुभव राजनीतिक दृष्टि से भी मूल्यवान है। सीतान्वेषण के निमित्त हनुमानजी रावण के गुप्तचर केंद्र में प्रवेश करते हैं। वहां वे अनेक प्रकार के गुप्तचरों को देखते हैं। पता चलता है कि लंका का गुप्तचर विभाग अयोध्या से बहुत सक्षम और विकसित था। जटाधारी, वल्कलधारी, केशधारी, शिरोमुंडी, दिगंबर, भस्मधारी, विकलांग मालाधारी, दण्डाधारी, लंबे, बौने, एक आंख वाले, लंगड़े, गेरुआधारी, जादूगर–ऐसे तरह–तरह के लोग उस गुप्तचर केंद्र में थे।[7] कहां–कहां तक उनकी पहुंच हुई होगी, हम कल्पना कर सकते हैं। इस व्यवस्था में

**महर्षि वाल्मीकि की रामायण में भी राजनीति संबंधी वर्णन पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। रामायण की कथा में तीन सभ्यताएं दिखाई पड़ती हैं-अयोध्या सभ्यता, किष्किंधा सभ्यता व लंका सभ्यता। तीनों की राजनैतिक संकल्पनाओं में समता एवं विषमता दोनों दिखाई देती हैं**

रुडयार्ड किपलिंग ने

**उन्हें अपनी कल्पनाओं**

में बसाया और अब हम

**उन्हें बसा रहें है,**

एक नए परिवेश में।

## "ओएनजीसी बारासिंघा (ईस्टर्न स्वैम्प डीअर) संरक्षण परियोजना"

**एक दुर्लभ प्रजाति को विलुप्त होने से बचाने के लिए ओएनजीसी की सीएसआर पहल।**

असम में पाये जाने वाले बारासिंघा या ईस्टर्न स्वैम्प डीअर *(Rucervus duvaucelii ranjitsinhi)* आज विलुप्त होने की कगार पर है। प्रसिद्ध लेखक रुडयार्ड किपलिंग ने जिस से मंत्रमुग्ध हो कर उसकी सुन्दरता को अपनी दूसरी किताब 'द सेकंड जंगल बुक' में कैद किया हो, उस जीव के लिये यह काफी दुखद स्थिति है।

ओएनजीसी ने इस प्रजाति को विलुप्त होने से बचाने के लिये अपने कदम बढ़ाये, और वो भी बिल्कुल सही समय पर।

इसके पहले चरण के अन्तर्गत इनकी अनुमानित आबादी, अनुकूल पर्यावरण, पशु–चिकित्सा अंतःक्षेप एवं सामान्य अध्ययन और जागरूकता अभियान किया गया। इनके स्थानांतरण के लिये मानस राष्ट्रीय उद्यान को चुना गया, जो इनके रहने के लिये बिल्कुल उपयुक्त स्थान था।

काज़ीरंगा राष्ट्रीय उद्यान से 19 बारासिंघो को मानस में स्थानांतरित करना बहुत ही कठिन काम था। योजना के इस अत्यंत कठिन दूसरे चरण को दक्षिण अफ्रीका से बुलाये गये वन्यजीव विशेषज्ञों ने बहुत खास तरीके से अंजाम दिया। 19 बारासिंघो का स्थानांतरण खास तंबुओ में किया गया, जिनको अन्दर से उनके प्राकृतिक आवास जैसा ही बनाया गया था। कुछ ही महीनों में 6 नवजात बारासिंघो ने झुण्ड में जुड़कर, स्थानांतरण की खुशी को दुगना कर दिया।

इस योजना के विस्तार के तीसरे चरण के अन्तर्गत 20 अतिरिक्त बारासिंघो का स्थानांतरण किया जा रहा है।

यह परियोजना संतुलित पर्यावरण की ओर ओएनजीसी की एक शुरुआत है। लुप्तप्राय प्रजातियों का संरक्षण करने के लिये प्रेरित, हमारा संगठन प्रकृति की असली सुंदरता को बनाये रखने के लिये प्रतिबद्ध है।

---

ओएनजीसी
ONGC

**ऑयल एण्ड नेचुरल गैस कॉरपोरेशन लिमिटेड**
पंजीकृत कार्यालय:- दीनदयाल ऊर्जा भवन,
5, नैलसन मंण्डेला मार्ग, वंसत कुँज, नई दिल्ली-110070
दूरभाष: 011-26752021, 26122148, फैक्स: 011-26129091
www.ongcindia.com /ONGC Limited @ONGC_

# जन-जन तक पहुँचते हुए - खुशियां बिखेरते हुए

**यह एक वादा है जिसे एनएलसी इंडिया ने 1962 से विश्वसनीयता से निभाया है।**

विकास का तात्पर्य विघटन से है। यह हमारे संस्थापकों की उस बुद्धिमता को श्रद्धांजलि है जहाँ उन्होंने उन लोगों की आवश्यकताओं को अंगीकृत किया जिन्होंने परियोजना की सफलता हेतु एक आरोपित जीवनशैली का त्याग कर दिया। अवसरों एवं पोषण द्वारा, एनएलसी इंडिया ने नेयवली को अपना नया घर बनाने वालों के लिए एक नवीन जीवन भी सुनिश्चित किया है। यह एक ऐसे समय पर हुआ जब सीएसआर की अवधारणा अपनी शैशवावस्था में थी। आनेवाले वर्षों में, खनन एवं विद्युत उत्पादन को अपनी मुख्य गतिविधि के रूप में जारी रखने के बावजूद एनएलसी इंडिया ने निगमित सामाजिक दायित्व का एक आदर्श स्थापित किया है जिसने अन्य संगठनों के लिए भी मानदंड निर्धारित किए हैं तथा अपने स्व-प्रतिष्ठानों के विकास हेतु समाज की सहजीवी शक्ति को पहचाना है।

**परिधीय क्षेत्रों में सीएसआर पहले :**

- आस-पास के गाँवों के लिए पेयजल सुविधा।
- 20,000 एकड़ के घेराव में सिंचाई अवसंरचना का निर्माण।
- विशेष बच्चों के लिए स्नेहा संस्थान तथा गरीब एवं बुज़ुर्ग महिलाओं के लिए वैगई की स्थापना।
- जयपुर किस्म के कृत्रिम अंग बनाने हेतु इकाई की स्थापना।
- निःशुल्क चिकित्सा शिविर।
- श्रावणी - बोलने एवं सुनने में अक्षमों के लिए एक विद्यालय।

**एनएलसी इंडिया कल्याण पहलों की विशेषताएं :**

- कर्मचारियों हेतु 21000 से अधिक आवासों का उपनगर।
- 350 बिस्तरों के आधुनिक अस्पताल तथा परिधीय औषधालयों के साथ चिकित्सा बीमा व्याप्ति।
- शिक्षण संस्थानों में स्वास्थ्य सेवा।
- महिला सशक्तिकरण केंद्र।
- स्मार्ट स्कूल।
- मनोरंजन की सुविधाएं - अंतर्राष्ट्रीय मानकों के क्लब एवं तरणताल।
- खेल संबंधी अवसंरचना।
- सेवानिवृत्ति पश्चात् चिकित्सा लाभ।
- बच्चों के लिए शिशु सदन तथा प्ले-स्कूल।

CREATING WEALTH FOR WELLBEING

**एनएलसी इंडिया लिमिटेड**
(पूर्व में नेयवेली लिग्नाइट कार्पोरेशन लिमिटेड)
(भारत सरकार का 'नवरत्न' उद्यम)

Digital India
Power To Empower

**पंजीकृत कार्यालय :** प्रथम तल, नं. 8 मेयर सत्यमूर्ति रोड, एफएसडी,
भारतीय खाद्य निगम का एम्मोर कांप्लेक्स, चेटपेट, चेन्नै -600031 तमिलनाडु, भारत
फोन नं. : 044-28364613, 614, 620 फैक्स : 044-28364619 सीआइएन : L93090TN1956GO1003507 **वेबसाइट** : www.nlcindia.com

भारत की दृष्टि का निष्पादन

शिथिलता आ पड़ी है, ऐसी शूर्पणखा की शिकायत थी। लक्ष्मण द्वारा अपमानित होने पर वह सीधी रावण की राज्य सभा में प्रवेश करती है और चिल्लाती है कि 'तुम्हारे प्रभाव क्षेत्र जनस्थान में शत्रु आ चुके हैं तुमको जानकारी नहीं, क्या है तुम्हारी गुप्तचर व्यवस्था?'[8] सक्षम शासन में गुप्तचर विभाग की अनिवार्यता रहती है। यह प्राचीन काल से हिंदू राजनीति का भाग था। वाल्मीकि रामायण में अन्यत्र भी हमें उस प्रकार की जानकारी मिलती है। यहां मैने केवल दो उदाहरण दिए हैं।

## महाभारत में राजनीति

यहां से हम महाभारत के महासागर के किनारे जाएंगे। 'हिंदू राजनीति' विषय के विस्तृत अध्ययन में गोता मारने हेतु वहां एक अथाह महासागर ही सामने है। भिन्न–भिन्न प्रकार की राजनीतिक धाराएं उसमें मिलती हैं। यहां भी मैं 2–3 उदाहरण ही प्रस्तुत करूंगा।

**कणिकः** धृतराष्ट्र का राजनीतिक गुरु कणिक है। नैतिक मूल्यों को तिलांजलि देकर किसी भी तरह अपना कार्य करना उसका सिद्धांत है। उसी के उपदेश से धृतराष्ट्र पक्ष ने पांडवों को लाख के घर में जला देने का षडयंत्र रचाया था। उसके उपदेश के कई–कई वचन हैं। 'अपना चाल–चलन किसी के भी ध्यान में न आने दें। कछुए के जैसे चारो पैर और मुख अंदर खींचकर छिपाने की तैयारी हमेशा हो। उसी समय दूसरों का पूरा चाल–चलन अच्छी तरह समझें। पकड़ में आने के बाद उसको पूरी तरह से पछाड़ दो। मौके के अनुसार उल्लू बनो, अंधे बनो। हिचकिचाओ मत। दुश्मन से डर उसके मरने तक ही है। किसी पर भी भरोसा रखना ठीक नहीं। कार्य साधने में रिश्ता नाता कुछ नहीं। मन की बात गुप्त रखो। पश्चाताप की गुंजाइश न हो, उस प्रकार पैर रखो।' ऐसे रुख वाले को भगवान व्यास का दिया विशेषण है 'राजशास्त्रार्थवित् और मंत्रज्ञ'[9] (आदि –पर्व –138–139) स्टालिनिस्ट, मक्कियावलीन चाल जैसी चाल है कणिक की।

## महात्मा विदुर

कणिक से बिलकुल विपरीत है महात्मा विदुर का राजनीतिक रुख। वे धर्मानुकूल नैतिक राजनीति के पक्षधर थे। सुदीर्घ उपदेश के अंत में वे धृतराष्ट से कहते हैं–'अंत में, मैं आपसे उत्कृष्ट पुण्यदायक तथ्य बता रहा हूं कि काम, भय, लोभ से धर्म का त्याग न करें, प्राण संकट में पड़ें तो भी उसको न छोड़ दें।' उनके बहुआयामी उपदेशों में राजा का कर्तव्य, अमात्यों के गुण, सैन्य का विन्यास, कर व्यवस्था, भ्रष्टाचार से मुक्त जीवनशुचिता इत्यादि विषय मुखरित होते हैं। हिंदू राजनीति के विषय में विदुर का योगदान प्रभूत है। किसी भी अनुसंधाता को उन्हें किनारे करना संभव नहीं। वैसा करना उस विषय की ओर अन्याय होगा।

**महर्षि नारदः** नारद की छवि ऐसी है कि कोई नहीं सोच सकता कि वे राजनीति के भी तज्ञ थे। वे महान नीतिज्ञ भी थे। व्यास भगवान का कहना है कि वे 'ऐक्य–संयोग–नानात्व–समवाय–विशारदः' थे। 'मेधावी–स्मृतिमान् न्यायविद नयविद्' थे।[10] (सभा पर्व–5–2,3) इन्द्रप्रस्थ की प्रतिस्थापना के बाद उन्होंने युधिष्ठिर और अन्य भाइयों से प्रशासन संबंधी जो चर्चा की वह मात्र चर्चा नहीं थी। वह था मूल्यवान सदुपदेश। महाभारत के सभा पर्व के 5वें अध्याय में यह जानकारी उपलब्ध है। 129 श्लोकों के उस लंबे अध्याय का सर्वकष अध्ययन अनुसंधान के विद्वान के लिए अनिवार्य है। उसमें से चार–पांच उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूंगा।

किसी भी शासन में मुख्य घटक मनुष्य है। वही व्यवस्था का प्राणवान संसाधन है। उस पर ही शेष सब केंद्रित होता है। उस महत्व को ध्यान में रखकर महर्षि नारद युवराज युधिष्ठिर से प्रश्न करते हैं–'राजन, अर्थ के लालच में आप धर्म की उपेक्षा करते हैं क्या? अथवा केवल धर्म की आसक्ति से धर्म की उपेक्षा करते हैं क्या? वैसा अतिरेकी व्यवहार उचित नहीं। दोनों की उपेक्षा न हो। विवेक से दोनों की ओर आपका योग्य ध्यान हो।' उसके बाद राजा व शासन अधिकारी के विशेष गुणों का उल्लेख करते हैं। त्याज्य दुर्गुणों के बारे में भी नारद सचेत करते हैं।

'किसी भी राजा को 14 दोषों को टाल देना चाहिए। वे हैं नास्तिकता, असत्य, क्रोध, दीर्घसूत्रता या टालमटोल, विद्वानों की अवहेलना, प्रमाद, आलस्य, विषय विलासिता, असामूहिकता, अनिपुणों से अर्थविषयक परामर्श, निर्णयों का अनारंभ, गुप्तता का अपालन, मंगल पर्वों की अवज्ञा, चहुं ओर एक साथ मोर्चा लेना। इस ओर आप सावधान हैं न?'[11]

अचूक प्रशासन संबंधित प्रश्न हैः 'हे राजन! आपके चारो ओर के मित्र, रिपु, निष्पक्ष इन तीनों की गतिविधियों पर आप नजर रखते हैं क्या? उसके अनुसार अपनी योजना भी बनाते हैं क्या? आपको सही सलाह देने वाले मंत्री लोग हैं न? वे सारे विश्वासी हैं न? उन सबका लगाव आप पर पक्का है न? राजा की विजय सही सलाह पर निर्भर है।' नारद का कहना है कि राजा महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार–विमर्श विश्वासी मंत्रियों की छोटी टोली से करें, अकेले निर्णय न लें। उसी समय टोली बड़ी न हो, उससे गुप्तता का बहाव होगा।[12] (2–5–30) वे मंत्रियों के लिए आवश्यक गुणों के बारे में कहते हैं। सरकारी कर्मचारियों की ईमानदारी एवं भ्रष्टाचार विहीनता का भी उल्लेख करते हैं। राज्य या राजा के सेवकों के परिवार जनों की देखभाल का दायित्व शासन का है। सभी सेवा कर्मचारियों को ठीक समय पर उनका वेतन देना चाहिए। उसमें काट–छांट न करें, विलंब न करें। यदि वह वर्ग नाराज हो जाता है तो नुकसान राज्य का है।[13] (सभा पर्व 5–50)

प्रजापालन की दृष्टि से नारद का उपदेश है कि प्रशासन कृषि की योग्य व्यवस्था करे। केवल वर्षा पर न रहते हुए

**धृतराष्ट्र का राजनीतिक गुरु कणिक है। नैतिक मूल्यों को तिलांजलि देकर किसी भी तरह अपना कार्य करना उसका सिद्धांत है। उसी के उपदेश से धृतराष्ट्र पक्ष ने पांडवों को लाख के घर में जला देने का षडयंत्र रचाया था। उसके उपदेश के कई-कई वचन हैं**

कुएं, तालाब, तगाड़, बांध आदि का निर्माण करे। किसानों को बीज पहुंचाने की व्यवस्था करे। किसानों से राजा का परिचय प्रत्यक्ष हो। वे सारे अपने ही परिवार के हैं, इस भाव से उनकी देख–रेख ममता के भाव से हो। राजा राज्य में रहने वाले अपंग जनों की उपेक्षा न करे। पराधीन उन अभागियों का पालन–पोषण विशेष रूप से करे। इस प्रकार प्रशासन संबंधित सर्वकष उपदेश है महर्षि नारद का। महाभारत के सभा पर्व के उस 5वें अध्याय में प्रश्नरूपी उपदेशों के श्लोक 129 में 109 हैं। आप सोच सकते हैं कि वह उपदेश मालिका कितनी गंभीर और सर्वाश्लेषी होगी। हिंदू राजनीति का कोई भी अध्येता इस अध्याय की अवगणना नहीं कर सकता। उसके प्रायः अंत में फलश्रुति के रूप में मुनिश्वर कहते हैं, 'इस प्रकार की बुद्धि से जो व्यवहार करता है, उसका राष्ट्र शिथिल नहीं होता। वह राजा धरती को धारण करता है और अत्यंत सुख को प्राप्त करता है।'

## पितामह भीष्म

कणिक, विदुर, नारद के पश्चात हमारे सम्मुख उपस्थित होते हैं पितामह भीष्माचार्य। वे हैं राजनीति शास्त्र के महामेरु। महाभारत के भीमाकारी दो पर्वो–शांति पर्व और अनुशासन पर्व के स्वामी हैं वे। उनके अति विशाल प्रतिपादन का निचोड़ भी बहुत बड़ा होगा। अतः एक झलक मात्र आम लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करने का साहस करूंगा। पितामह भीष्म से युधिष्ठिर के प्रश्न अनेक हैं। परंतु हमारी दृष्टि से उनके राजनीति संबंधित 10 प्रश्न अत्यंत मार्मिक हैं। युधिष्ठिर प्रशासन संबंधित 10 प्रश्न पूछ रहे हैं। प्रशासन को संस्कृत में दण्ड कहा है। वह एक तकनीकी शब्द है, पारिभाषित शब्द है। उसका अर्थ जैसा आज समझा जाता है वैसा दण्ड नहीं। युधिष्ठिर पूछ रहे हैं–दण्ड क्या है? वह कैसा है? उसके क्या–क्या रूप हैं। उसका अधिष्ठान क्या है? उसका साध्य क्या है? उसका उद्भव कैसा है? उसका संविधान क्या है? जनता की सेवा में दण्ड कैसे जाग्रत रहता है? स्वस्थ दंड कौन–सा है। उसकी गति–प्रगति कैसी है?[14] (शांति पर्व 1–121–5,6,7)

इन प्रश्नों का उत्तर है भीष्म द्वारा प्रतिपादित राजनीतिक दर्शन। प्रश्नों के क्रमबद्ध समाधान के पहले पूर्व पीठिका के नाते वे कहते हैं, एक समय ऐसा था जब विश्व में दण्ड (प्रशासन) की आवश्यकता नहीं थी। उस जमाने में आंतरिक नैतिक मूल्यों की भावनात्मक व सात्विक प्रेरणा से लोग बिना किसी बाहरी नियंत्रण के अपने आप पारस्परिक कृतिव से सहयोगी सुभद्र जीवन बिताते थे। उस समय राज्य नाम की चीज नहीं थी, राजा नाम का कोई पद नहीं था। प्रशासन नाम की मानवी चेष्टा नहीं थी। अतः प्रशासक भी नहीं था। जिस सत्प्रेरणा से वे रहा करते थे उसका नाम था धर्म। धर्म ही जनता को धारण करता था। काल के प्रवाह में मानव के अंतःकरण में नकारात्मक गुणों के उभरने से इस अवस्था की क्षति हुई व क्षतिपूर्ति के मानवी प्रयास से राज्य–राजा व्यवस्था का उदय हुआ। फिर भीष्म पितामह युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर देना प्रारंभ करते हैं।

**धर्म ही जनता को धारण करता था। काल के प्रवाह में मानव के अंतःकरण में नकारात्मक गुणों के उभरने से इस अवस्था की क्षति हुई व क्षतिपूर्ति के मानवी प्रयास से राज्य-राजा व्यवस्था का उदय हुआ। फिर भीष्म पितामह युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर देना प्रारंभ करते हैं**

## राज्य व्यवस्थाएं

राज्य व्यवस्था संबंधित विवरण भी महाभारत में एक से अधिक है। आज जिसे हम रिपब्लिक कहते हैं उसको भीष्म गणराज्य या संघ राज्य कहते हैं। उसका स्वरूप, उसकी गुणवत्ता, उसका दोष आदि वे स्पष्टता से युधिष्ठिर को समझाते हैं। श्रीकृष्ण की मथुरा, पश्चात द्वारका गणराज्य था। वहां राजा नहीं था, राजकाज करने वाले जिम्मेदारों को राजन्य कहते थे। द्वारका की लोकसभा का नाम था सुधर्मा। अच्छे सफल सभासद के बारे में कहा है–'आप सभा में प्रवेश करें, न करें आपकी इच्छा। अंदर गए तो योग्य तर्कसंगत बोलना चाहिए। मौन रहते या अंडबंड बोलते हैं तो वह बन जाता है पापी या अपराधी।' यह कितना सटीक है। पुरानी राजनीति का यह श्लोक हमारे वर्तमान संसद भवन के लिफ्ट 2 के उपर अंकित है। सभवतः उस लिफ्ट से हमारे अधिकांश सांसद नहीं जाते होंगे। केवल सभासदों के बारे में नहीं, सभा के बारे में भी महाभारत का विशेष मत है। 'वह सभा नहीं जहां वृद्ध नहीं। वे वृद्ध नहीं जो धर्म नहीं बोलते। वह धर्म नहीं जो सत्य नहीं। वह सत्य नहीं जिसमें छल कपट है।' उसी प्रकार भीष्म पितामह प्रशासन की आवश्यकता पर जोर देते हुए सराजकता बनाम अराजकता का विवेचन करते हैं। Anarchy Vs Monarchy उनका विषय है। 'यदि राजा न पालयेत् बनाम यदि रक्षति भूमिपः' उनके शब्द हैं।[15] (शांति पर्व–68)

आज हम लोग दोहन व शोषण की बात करते हैं। भीष्म का कहना है कि दोहन प्रजा की सृजन क्षमता और सृजन वृत्ति को कायम रखता है। शोषण दोनों का नाश करता है। उसकी अति सुंदर व्याख्या करते हुए वे दोहन का ही उदाहरण देते हैं। आदमी अगर दूध की चाह से गाय का थन काटेगा तो उसे दूध नहीं मिलेगा। अगर वह दुधारू गाय के पास प्रेम से जाता है तो उसे भरपूर दूध मिलेगा। इसी राह पर आगे जाकर वे कर व्यवस्था के बुनियादी सिद्धांत को बतलाते हैं। उनका निदेशन है कि कर ग्रहण से लेने और देने वाला दोनों की भलाई हो। देने वाले का नुकसान न हो। उसकी सृजनशीलता का नाश न हो। उसको दुख या पीड़ा न हो। मैं वंचित हो रहा हूं ऐसा भाव उसमें न हो। कर लेने वाला मृदुता से काम करे अर्थात Bureaucratic aggrandizement हो। काम क्रमशः किंतु निरंतर रहे। उसके लिए लौकिक अनुभवों के धनी भीष्म उदाहरण देते हैं। मधुमक्खी सैकड़ो फूलों से क्रमशः कणशः चूसकर मधु इकट्ठा करती है, बछड़ा मां के स्तनों को पीड़ा न देते हुए दूध पीता है, जोंक दर्द न देते हुए धीमे–धीमे खून चूसता है, पैर को तीर लगी चुहिया रेंगते रेंगते भी अपना काम नहीं छोड़ती है। बाघिन अपने बच्चे को तीक्ष्ण दांतों से पकड़कर उसको दर्द न देते हुए

गुफा में ले जाती है। वैसे ही कोश इकट्ठा किया गया।[16] (शांति पर्व–88–3–6)

कितना उन्मीलक उदाहरण–मधुमक्खी, बछड़ा, जोंक, चुहिया और बाघिन, आज इसी को कर सिद्धांत कहते हैं।

इस प्रकार के असंख्य प्रबोधक उपदेश पितामह युधिष्ठिर को दे रहे हैं। आज समय बदल गया होगा। विज्ञान बहुत प्रगत हुआ होगा। फिर भी मनुष्य मनुष्य ही है। भाव भावना से नर नर ही है। उनकी समस्याओं के पीछे के मनोवैज्ञानिक तान तरंग वही है। उस दृष्टि से सरकारी कर वसूली के मूलतत्व अपरिवर्तनीय हैं। अतः भीष्म का तात्विक मार्गदर्शन आज भी प्रासंगिक है।

## तत्पश्चात्

अब तक मैंने वेद, रामायण और महाभारत कालीन राजनीतिक जानकारी देने का थोड़ा सा प्रयास किया। वह कालखंड इतिहासज्ञों के हिसाब से प्रायः पांच हजार वर्ष पुराना है। उसके बाद चार हजार साल तक इस भारत वर्ष में सनातन धर्मीय राष्ट्रीय हिंदू जीवन अक्षुण्य चलता रहा। इस बीच मौर्य, गुप्त, चालुक्य, चेर, चोल, पाण्ड्य, होयसाल आदि विशाल राज्य साम्राज्य अस्तित्व में आए। विशिष्ट काल–परीक्षित राजनीतिक अधिष्ठान के बिना वह संभव नहीं था। विशाल भूभाग में व्यवस्थित सुयोजित जन–जीवन खड़ा करना, घुमन्तू जमात का तंबू जीवन जैसा आसान काम नहीं। अतः यह निर्विवाद है कि इस देश में व्यावहारिक शास्त्रीय राजनीतिक जीवन विकसित हुआ था और उसका इतिहास लंबा है। कई सदियों के बाद, मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात भी यहां विजयनगर साम्राज्य, शिवाजी छत्रपति का साम्राज्य, रणजीत सिंह का साम्राज्य स्थापित हुए थे। शिवाजी महाराज ने हिंदू प्रशासन कोश भी तैयार करवाया था। इसका स्पष्ट अनुमान यह है कि हिंदू राजनीति का विषय वेद काल से वर्तमान 16वीं सदी तक का ऐतिहासिक सत्य है। उसका अध्ययन और अनुसंधान व्यापक एवं बहुआयामी होगा।

## अपराधी अवगणना

दुर्दैव से दुखद सत्य यह है कि हम इस देश के निवासी इस दिशा में बहुत पीछे हैं। जैसे मैंने प्रारंभ में ही कहा था, 20वीं सदी के प्रथम पाद के बाद इस ओर अवगणना हुई। शिक्षा की ओर हम जरूर आगे बढ़ रहे थे। यहां विश्वविद्यालयों की संख्या धीरे–धीरे बढ़ रही थी। इस देश के राजा–महाराजा अपने राज्य में विद्यालय–महाविद्यालयों की स्थापना करते थे। विज्ञान की विद्याशाखा प्रगति के पथ पर थी। राजनीतिक तौर पर स्वतंत्रता की लड़ाई जोर पकड़ रही थी। फिर भी भारत की आत्मा की खोज संबंधित विषयों से हमारा ध्यान अन्यत्र मुड़ गया। प्रारंभ में कहे 'हिंदू पॉलिटी', 'हिंदू केमिस्ट्री' जैसे विषय अंग्रेजी प्रभावित शिक्षाविदों को दकियानूसी लगने लगे। मेरे मन में कभी कभी शंका उत्पन्न होती है कि यह भी चालाक अंग्रेजी सूत्रधारों के कारण हुआ होगा। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर हमें मालूम होता है कि 1920 के पश्चात हिंदू मानविकी की ओर से बुद्धिजीवियों का ध्यान हट गया। मेरा अंदाज है कि वह हटाया गया। अंग्रेजों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से विश्वविद्यालयों के कुलपतियों द्वारा इस दिशा के विषयों को किनारे करवाया होगा। इस दिशा का अनुसंधान आधुनिकता तथा वैज्ञानिकता के आकर्षक शब्दों की आड़ में दबाया गया होगा। यही एक कारण होगा कि 1920 के पश्चात हिंदू पॉलिटी, हिंदू केमिस्ट्री जैसे मौलिक अनुसंधान ग्रंथ कम जन्मे या नहीं जन्मे। अंग्रेजों ने अनजाने हिंदू मस्तिष्क का प्रक्षालन किया होगा।

## जाग्रत जन–मन

1947 में हमें स्वतत्रंता मिली। सात दशक बीत गए तो भी 1920 के पश्चात घुसी अवज्ञा कायम दिखती है। परंतु बुद्धिमान लोग कहते हैं कि किसी भी पतन का एक छोर रहता है। वहां पहुंचकर मनुष्य उससे ऊपर उठना प्रारंभ करता है। भारत की भी हालत वही है। 20वीं सदी के प्रारंभ में स्वामी विवेकानंद ने रामेश्वर से अल्मोड़ा तक प्रवास कर जगह–जगह राष्ट्रीय आत्मबोध का बीज बोया। उन्होंने घोषित किया कि प्रत्येक राष्ट्र का विशेष स्वत्व या अस्मिता है। भारत का स्वत्व है धर्म। वही है भारत की दिशा एवं नियति। 25 साल के अंदर स्वामी विवेकानंद द्वारा बोया बीज अंकुरित होकर वर्तमान में राष्ट्रव्यापी विशाल वटवृक्ष बन चुका है। समूचे राष्ट्र में बहुत बड़ा वर्ग राष्ट्रीय आत्म की खोज के लिए आतुर है। अतएव दो दशक पूर्व भूतपूर्व साम्यवादी अर्थशास्त्री प्राध्यापक बोकारे की 'हिंदू इकोनॉमिक्स' पुस्तक मिली। अतएव हिंदू मस्तिष्क से युगानुकूल एकात्म मानवदर्शन मुखरित हुआ। इस पार्श्वभूमि में भारतीय विचार मंच का यह प्रयास अतीव सराहनीय है। उसके पदाधिकारी अलुब्ध अभिनंदन के पात्र हैं।

## संस्कृत भाषा का अध्ययन अनिवार्य

अनुसंधान के विषय में मेरी एक विनम्र प्रार्थना है, कृपया आजकल प्रचलित काट–लिपट (cut and paste) के पीछे न पड़ें। हिंदू राजनीति के प्रगाढ़ अध्ययन के लिए संस्कृत भाषा का अध्ययन अनिवार्य है। उसके लिए इस दिशा के अनुसंधाता दृढ़ निश्चयी हों। उच्च स्तरीय वैज्ञानिक अध्ययन हेतु जर्मनी जाने वाले वैज्ञानिक तीन माह में जर्मन भाषा सीखते हैं। गत दशक के अंत में रूस जाने वाले छात्र रूसी भाषा पढ़ते थे। भारतीय मस्तिष्क के लिए क्या असाध्य है? संस्कृत शब्दों को अच्छी तरह से समझकर ही अनुसंधान हो। इस पर आग्रह होना आवश्यक है। कम से कम किसी संस्कृत आचार्य की मदद लें, इसमें समझौता न हों। तभी अनुसंधान के मंथन से आविष्कार का नवनीत निकलेगा।

मनीषियों का कहना है कि यदि एक शब्द को अचूक समझ लिया तो वह कामधेनु का काम करता है। अनुसंधान का क्षेत्र विशाल है। उसमें हिंदू राजनीति मात्र एक विषय है। भारतीय युद्धनीति, भारतीय

**शिवाजी महाराज ने हिंदू प्रशासन कोश भी तैयार करवाया था। इसका स्पष्ट अनुमान यह है कि हिंदू राजनीति का विषय वेद काल से वर्तमान 16वीं सदी तक का ऐतिहासिक सत्य है। उसका अध्ययन और अनुसंधान व्यापक एवं बहुआयामी होगा**

दुर्गवास्तुशास्त्र, हिंदू सेना रचना, हिंदू अर्थनीति, भारतीय नौका निर्माण, हिंदुओं का सागर प्रयाण, आयुर्वेद की चिकित्सा शाखाएं, भारतवर्ष के अंदर की विभिन्न राज्य व्यवस्थाएं आदि कितने विषय हैं। विषयों के स्रोत की दृष्टि से समूचे भारत में सैकड़ों पांडुलिपि संग्रहालय हैं। उन्हें योजनापूर्वक अनुप्राणित करना होगा। हिंदू जीवन से संबंधित यह अति संपन्न संग्रह है। उसी प्रकार कौटिलीय अर्थशास्त्र, कल्हण का राजतरंगिणी जैसे ग्रंथ हैं। संभव है तो उन ग्रंथों का भाषांतर सभी भाषाओं में कराना होगा।

प्राध्यापक, प्राचार्य,कुलपति, उपकुलपति, शिक्षा विभाग के प्रमुख सदस्य आदि बंधुओं का योगदान इस दिशा में बढ़ाने की आवश्यकता है। अनुसंधान के विषय निर्धारित करने में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। यदि 2025 के पूर्व हम इस प्रकार के राष्ट्रीय अस्मिता संबंधित विषयों के 1000 अध्ययन करने वालों को बढ़ा सकेंगे तो वह प्रयास अत्यंत परिणामकारी होगा। विश्व की विचार संपदा में वह महत्वपूर्ण योगदान होगा। वह इस राष्ट्र की वैचारिक धरोहर का अभिव्यंजन होगा। उससे राष्ट्रीय समाज का आत्मविश्वास बढ़ेगा फिर से 'कृण्वन्तो विश्वमार्यं' का राष्ट्रीय मिशन पल्लवित होगा। ■

*keralarss@gmail.com*
संपर्क–7034195393

**संदर्भ संकेत**

1 *के. पी. जायसवाल लिखित पुस्तक 'हिंदू पॉलिटी' 1924 में प्रकाशित हुई*
2 *'स्पिरिट एंड फॉर्म ऑफ इंडियन पॉलिटी', आर्य पब्लिशिंग हाउस 1947*
3 *'अ हिस्टी ऑफ हिंदू केमिस्ट्री', लेखक प्रफुल चन्द्र रे 1902 में प्रकाशित*
4 *'फंडामेंटल यूनिटी ऑफ इंडिया' लेखकः राधा कुमुद मुखर्जी, 1914 में प्रकाशित*
5 *ऋग्वेद, 5–66–6*
6 *महर्षि वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड 100वां सर्ग, श्लोक 76*
7 *वाल्मीकि रामायण सुन्दर काण्ड चतुर्थ सर्ग, श्लोक सं–5,6,7*
8 *वाल्मीकि रामायण अरण्य काण्ड, सर्ग 22, श्लोक सं–1 से 22*
9 *महाभारत, आदि –पर्व –138–139*
10 *महाभारत सभा पर्व–5–2,3*
11 *महाभारत सभा पर्व–2–5–108, 109,110*
12 *महाभारत सभा पर्व 2–5–30*
13 *महाभारत सभा पर्व 5–50*
14 *महाभारत शांति पर्व 1–121–5,6,7*
15 *महाभारत शांति पर्व–68*
16 *महाभारत शांति पर्व–88–3–6*

# सामी संस्कृतिः प्रभु बनाम शैतान

सेमेटक संस्कृति वर्तमान पश्चिम संस्कृति का प्रथम चरण ही संघर्ष से आगे बढ़ता है। प्रभु बनाम शैतान, दोनों में झगड़ा है, और बलि का बकरा है इंसान। यह है उस कथा का पहला पृष्ठ। आगे के पृष्ठ भी इसी मनोभाव से भरे हैं। इस पर सटीक व्यंग्य करते हुए खलील जिब्रान कहते हैं नजरन का ईसा और ईसाइयों का ईसा एक सदी में एक बार लेबनान के पहाड़ी उद्यान में मिलते हैं। उस दिन घंटों तक बहस चलती है।

अंत में नजरन के ईसा ईसाइयों के ईसा से कहते हैं, मेरे दोस्त, मैं आपसे कभी सहमत नहीं हो सकता। इतना कहकर झट से वापस जाता है। संघर्ष की यही कल्पना कम्युनिस्टों की रीढ़ में चढ़ी है। मालिक–मजदूर संघर्ष, वर्ग संघर्ष, उनके सिद्धांत का मूलमंत्र है। संघर्ष की नीति है, घृणा करना, लड़ना, अंततः जीना या मरना। सामंजस्य की नीति है मेल, साथ खाना, साथ रहना, अंततः मरे बिना शांतिपूर्वक जीना प्रतिकूल परिस्थिति में जीने की क्षमता सामंजस्य की है, संघर्ष की नहीं। ■

**– रंगाहरि,**
*मासिक पत्रिका 'पुनरुथान कार्य अने विचार संदेश', सितंबर–2018, पृ. 3 (साभार)*

# सामी संस्कृति संबंधी शेर

*सब तेरे सिवा काफिर इसका मतलब क्या।*
*सर फिरा दे इन्सान का ऐसा ख़ब्त–ए–मज़हब क्या।।*

(काफिर–अविश्वासी, ख़ब्त–पागलपन, मज़हब–धर्म)

**– मिर्जा वाजिद हुसैन चंगेजी**

# राजनीति के साथ नैतिकता

महान समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने अपने सुप्रसिद्ध व्याख्यान पॉलिटिक्स इज ए वोकेशन–म्यूनिख विश्वविद्यालय, 1919–में राजनीति एवं नैतिकता के अंतःसंबंध पर जिन चार कृतियों का उल्लेख किया, उनमें से तीन भारतीय मनीषा से हैं–उपनिषद, भगवद्गीता और कौटिल्य का अर्थशास्त्र।

राजनीति–कर्म के साथ नैतिकता के संबंध पर इतनी विशद्, अखंडित प्रस्तुति मैक्स वेबर को हिंदू मनीषा छोड़कर कहीं और नहीं मिली। ■

**–शंकर शरण,**
*पांचजन्य, भारतीय ज्ञान परंपरा अंक पृ. 47, वर्ष 70 अंक 10, 19 अगस्त, 2018 (साभार)*

# भारतीय ज्ञान परम्परा का नवांकुर: 'एकात्म मानववाद'

डॉ. महेश चंद्र शर्मा

राजा राममोहन राय से लेकर दीनदयाल उपाध्याय तक लगभग अस्सी वर्ष का कालखण्ड है, जिसमें पाश्चात्य एवं भारतीय जीवन-दर्शन, व्यवहार व तत्वज्ञान में एक सतत विमर्श चल रहा है। इस मंथन का नवरसायन 'एकात्म मानववाद' ही है। यह विचार भारत की इस शताब्दी की एक प्रखर मनीषा का प्रतिनिधित्व करता है, जो भारत को भारत बनाए रखना चाहती है पर दुनिया से कटकर नहीं, जो भारत को आधुनिक बनाना चाहती है

'एकात्म मानववाद' एक ऐतिहासिक विचार शृंखला की कड़ी के रूप में उत्पन्न हुआ है। यह प्राचीन यूनान व प्राचीन भारत के आधुनिक संस्करणों 16वीं, 17वीं सदी के यूरोपीय पुनर्जागरण तथा 20वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण के मेल का परिणाम था। 'थियोक्रेटिक' रोमन साम्राज्य के रूप में स्थापित ईश्वरी राजसत्ता को चुनौती दी गई थी। 'ईश्वर' एवं 'रहस्यवाद' के खिलाफ, प्राचीन ग्रीक दर्शन के प्रकाश में, 'मानववाद' का प्रणयन हुआ था। 15वीं शताब्दी के मध्य में कोंसटनटिनोपल (Constantinople) के पतन (1453) के बाद भूमध्य-रेखीय सभ्यता का चरित्र ही बदल गया। धरती के पटल की छानबीन शुरू हो गई, कोलम्बस ने नई दुनियाँ को खोज निकाला। कोपरनिक्स, गैलिलियो और न्यूटन के वैज्ञानिक अनुसंधानों ने चिंतन की दिशा एवं दृष्टि को ही बदल दिया।

इटैलियन पुनर्जागरण यूरोपव्यापी हो गया। अगोचर सत्ताओं के स्थान पर विवेक, विज्ञान, विमर्श व साहस की सत्ताओं की स्थापना हुई। पदार्थ एवं उसकी प्रतिक्रियाओं का वैज्ञानिक व समाजशास्त्रीय विवेचन प्रारम्भ हुआ। मेकियावेली से लेकर मार्क्स व मिल तक की एक विचारक श्रृंखला उत्पन्न हुई, जिसमें से 'पार्थिव मानववाद' उसकी 'लौकिक प्रवृत्ति' (Secular) एवं अनेक नवीन वादों का विकास हुआ। 'राष्ट्रीय राज्य' की नवीन राजनैतिक इकाई उत्पन्न हुई तथा व्यक्तिवाद व समाजवाद की परस्पर उग्र विरोधी धारणाओं का प्रणयन हुआ।[1]

नवीन खोजों तथा साहसिक पूँजीवाद के प्रकाश में यूरोपीय लोगों ने नई दुनियाँ में समुद्र पार व्यापार प्रारम्भ किया। यूरोपीय पुनर्जागरण तथा यूरोपीय साम्राज्यवाद का विकास साथ-साथ ही हुआ। यूरोपीय सम्पर्क, उसके साम्राज्यवाद की चोट एवं प्रजागृत आत्म सम्मान में से 20वीं सदी में एशियाई पुनर्जागरण का जन्म हुआ। भारत ने उसका नेतृत्व किया। एशियाई पुनर्जागरण 'यूरोपीय मानववाद एवं भारतीय आत्मवाद' का संगम स्थल बन गया। राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द व दयानन्द जैसे लोगों ने, इस पुनर्जागरण के शंख को फूँका। अपनी अमेरिका व यूरोप की यात्रा के बाद ओजस्वी संन्यासी स्वामी विवेकानन्द ने इस पुनर्जागरण को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया :

"यूरोप तथा अमरीकावासी तो यवनों (ग्रीकों) की समुन्नत मुखोज्ज्वलकारी संतान हैं, पर दुःख है कि आधुनिक भारतवासी प्राचीन आर्यकुल गौरव नहीं रह गए। किन्तु राख से ढँकी हुई अग्नि के समान, इन आधुनिक भारतवासियों में, छिपी हुई पैतृक शक्ति अब भी विद्यमान है। यथासमय महाशक्ति की कृपा से उसका पुनःस्फुरण (Renaissance) होगा।" यूरोपीय उपलब्धियों का जिक्र करते हुए स्वामीजी ने कहा, "जो हमारे पास नहीं है, शायद जो पहले भी नहीं थी, जिसका स्पंदन यूरोपीय विद्युदाधार (डाइनेमो) से उस महाशक्ति को बड़े वेग से उत्पन्न कर रहा है, जिसका संचार समस्त भूमण्डल में हो रहा है, हम उसी को चाहते हैं। वही उद्यम, वही स्वाधीनता की प्रीति, वही स्वावलम्बन, वही अटल धैर्य, वही कार्यदक्षता, वही एकता और वही उन्नति की इच्छा हम चाहते हैं। बीती बातों की उधेड़बुन छोड़कर अनन्त तक विस्तारित अग्रसर दृष्टि की हम कामना करते हैं और सिर से लेकर पैर तक की सब नसों में बहने वाले रजोगुण की उत्कट इच्छा रखते हैं।" पाश्चात्य व पौर्वात्य की पूरकता को उन्होंने उद्घाटित किया :

"भारत में रजोगुण का प्रायः सर्वथा अभाव ही है। इसी प्रकार पाश्चात्य में सत्वगुण का अभाव है। इसलिए यह निश्चित है कि भारत से बही हुई सत्वधारा के ऊपर पाश्चात्य जगत् का

जीवन निर्भर करेगा, और यह भी निश्चित है कि तमोगुण को रजोगुण के प्रवाह से बिना दबाए हमारा ऐहिक कल्याण नहीं होगा और बहुधा पारलौकिक कल्याण में भी विघ्न उपस्थित होंगे।"

इन दोनों की एकात्मता की कामना करते हुए स्वामीजी आह्वान करते हैं :

".....हमें निर्भीक होकर अपने घर के सब दवाजे खोल देने होंगे। संसार के चारो ओर से प्रकाश की किरणें आएँ, पाश्चात्यों का तीव्र प्रकाश भी आए। जो दुर्बल है, दोषयुक्त है, उसका नाश होगा ही। यदि वह चला जाता है तो जाये, उसे रखकर हमें क्या लाभ होगा? जो वीर्यवान, बलप्रद है, वह अविनाशी है, उसका नाश कौन कर सकता है?"[2]

"भारतीय धर्म के आधार पर क्या तुम यूरोप जैसा समाज बना सकते हो? मुझे विश्वास है कि यह संभव है और यह होना भी चाहिए।"[3]

पुनर्जागरण के इसी आह्वान में से भारतीय स्वाधीनता संग्राम उदित हुआ था। एक वैचारिक मंथन शुरु हुआ, जिसमें से राजा राममोहन राय के 'ब्रह्मवाद', विवेकानंद के 'समन्वित वेदान्त' तथा दयानंद के 'आर्यत्व' के संदेश रुपायित हुए थे। इसी धारा का लोकमान्य तिलक के 'कर्मवादी स्वराज्यवाद' अरविंद के 'वेदान्तिक स्वराज्य', गोखले, रानाडे व नौरोजी के 'उदारवादी सुराज्यवाद' के चिंतन के रूप में विकास हुआ। इसी को महात्मा गांधी के रामराज्य व सर्वोदय के विचारों ने, जवाहरलाल नेहरू के 'प्रजातंत्रवादी समाजवाद' ने तथा आचार्य नरेन्द्र देव के 'भारतीय समाजवाद' ने और आगे बढ़ाया। साम्यवाद की भी भारतीयतापरक वैदान्तिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई। प्रतिभा–सम्पन्न मार्क्सवादी भारतीय एम.एन. रॉय ने गैर–साम्यवादी बनकर 'नव मानववाद' का विचार प्रतिपादित किया। विनायक दामोदर सावरकर ने 'हिन्दुत्व दर्शन' को राजनैतिक विचारधारा का आधार बनाया। इस सारे

*दीनदयाल उपाध्याय*

चिंतन में भारतीय पुनर्जागरण प्रतिपादित, पाश्चात्य एवं भारतीय विचारों का परस्पर मंथन व सम्मिश्रण हो रहा था। इसी दौरान भारत स्वतंत्र हुआ। विचार–मंथन चलता ही रहा। इस विचार श्रृंखला की नवीनतम कड़ी है, दीनदयाल उपाध्याय प्रणीत 'एकात्म मानववाद'। स्वातंत्र्योत्तर भारत में इस विचार मंथन की प्रक्रिया का उपाध्याय निम्न शब्दों में वर्णन करते हैं :

"स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय राजनैतिक दर्शन का विचार बिल्कुल नहीं हुआ, यह कहना सत्य नहीं होगा। किन्तु अभी संकलित प्रयत्न करना बाकी है। गांधीजी की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए तथा भारतीय दृष्टिकोण से विचार करते हुए, सर्वोदय के विभिन्न नेताओं ने महत्वपूर्ण कल्पनाएँ रखी हैं। किन्तु विनोबा भावे ने 'ग्रामदान' के कार्य को जो अतिरेकी महत्व दिया है, उससे उनका वैचारिक क्षेत्र का योगदान पिछड़ गया है। जयप्रकाश बाबू भी जिन पचड़ों में पड़ गए हैं, उससे उनका चिंतन का कार्यक्रम रुक गया है। रामराज्य परिषद् के संस्थापक स्वामी करपात्रीजी ने भी 'रामराज्य और समाजवाद' लिखकर, पाश्चात्य जीवन दर्शनों की मीमांसा की है तथा अपने विचार रखे हैं, किन्तु उनकी दृष्टि मूलतः सनातनी होने के कारण, वे सुधारवादी आकांक्षाओं व आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं करते। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री मा.स. गोलवलकर भी समय–समय पर भारतीय दृष्टिकोण से राजनैतिक प्रश्नों का विवेचन करते हैं। भारतीय जनसंघ ने भी 'एकात्म मानववाद' के आधार पर उसी दिशा में कुछ प्रयत्न किया है। हिन्दूसभा ने 'हिन्दू समाजवाद' के नाम पर समाजवाद की कुछ अलग व्याख्या करने का प्रयत्न किया है, किन्तु वह विवरणात्मक रूप से सामने नहीं आया है। डॉ. सम्पूर्णानंद ने भी जो 'समाजवाद' पर विचार व्यक्त किए हैं, उनमें भारतीय जीवन–दर्शन का अच्छा विवेचन है। चिंतन की इस दिशा को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है।"[4]

**स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय राजनैतिक दर्शन का विचार बिल्कुल नहीं हुआ, यह कहना सत्य नहीं होगा। किन्तु अभी संकलित प्रयत्न करना बाकी है**

भारत का एक वैशिष्ट्य है कि वह विभिन्न मानवीय तथा सांस्कृतिक धाराओं को अपने में समा लेता है। यूरोप का जड़वाद भी इसका अपवाद नहीं रहेगा। इस संदर्भ में श्री अरविंद, जो भारतीय पुनर्जागरण एवं स्वातंत्र्य समर के अग्रदूत तथा प्रतिभासम्पन्न दार्शनिक थे, अपनी भावप्रधान शैली में लिखते हैं :

"..... हिमालय के दर्रों से औरों ने प्रवेश करना शुरू किया तो भारत से शांति खिसक गई। भारत को संघर्ष की सदियाँ बितानी पड़ी। अतः क्षोभ का काल आया, जिसमें उसी के बिखरे विचारों से उत्पन्न समस्याएँ, बड़े आग्रहपूर्ण रूप से वापस आई और उस पर अपनी दृष्टि, अपने विचार लादने की कोशिश करने लगी। उसके लिए वह अपने ही अतीत के बौद्धिक परीक्षणों की स्मृतियाँ थीं, जिन्हें उठाकर एक ओर रख दिया गया था। इतना ही नहीं, भुला दिया गया था। उसने उन्हें उठा लिया। नए प्रकाश में उन पर फिर से विचार किया और फिर अपना अंग बना लिया। उसने यूनानियों के साथ यही किया। सीरियनों के साथ, मुसलमानों के साथ ऐसा ही किया। वह अपने लौटते हुए सभी बच्चों के साथ ऐसा ही करेगा, चाहे वह ईसाई धर्म हो या यूरोपीय विज्ञान और जड़वाद। आज उसे जितनी सामग्री को आत्मसात करना है वह इतिहास में अद्वितीय और अनुपम है, परन्तु उसके लिए यह बच्चों का खेल है।"[5]

राजा राममोहन राय से लेकर दीनदयाल उपाध्याय तक लगभग अस्सी वर्ष का

# Consulting expertise...
## *fostering excellence!*

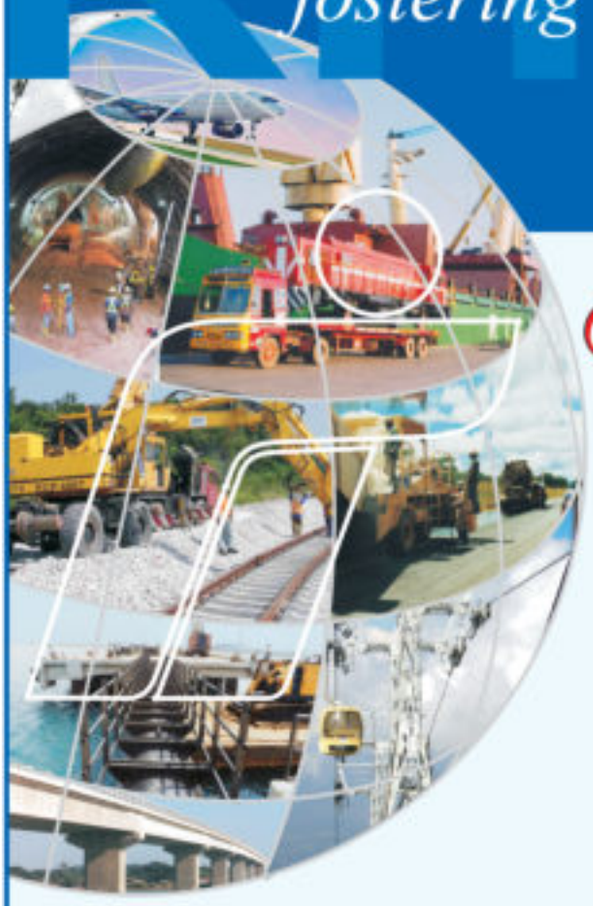

A vision to harness knowledge and shape dreams into reality. A mission of 'commitment to excellence'. A trusted consultant & business partner in the global arena. RITES, a 'Mini Ratna' Company has today grown and diversified from being a rail consultant to a company of Consultants, Engineers & Project Managers in varied fields of transport & infrastructure sectors.

It is internationally recognized as a leading consultant and project managers with operational experience in 62 countries of Africa, Middle East, South East Asia, Europe and Latin America.

RITES integrates frontiers of technology to scale new heights in modernisation of transportation and infrastructure development.

**SECTORS OF OPERATION :**

- Railways
- Roads and Highways
- Urban Transport
- Airports
- Ports and Water Resources
- Bridge and Tunnels
- Ropeways
- Urban Infrastructure
- Export packages & services

**SERVICE SPECTRUM :**

**From Concept to Commissioning:**

- Multi-modal transport studies
- Design and detailed engineering
- Project management and construction supervision
- Quality assurance & management - ISO 9000; 1S014000
- Material procurement services
- Workshop management
- Operation and maintenance
- Survey and Feasibility Study
- Management information systems
- Economic and financial evaluation
- Export/ Leasing of rolling stock
- Signalling & telecommunication
- Railway electrification
- Urban engineering

RITES
THE INFRASTRUCTURE PEOPLE

RITES BHAWAN, 1, Sector 29, Gurgaon, Haryana-122 001, INDIA
Tele : (0124) 2571666/67. Fascimile : (0124) 2571660
Website : http://www.rites.com e-mail : info@rites.com

# एक बार फिर
# विजय
## वापस हमारे पास

Great Place to Work Institute ने फिर एक बार चुना है एनटीपीसी को **Great Place to Work I** अपने **'people first'** दृष्टिकोण और विकास के लिए हमेशा पहल करने वाला एनटीपीसी आज भारत में सबसे पसंदीदा नियोक्ताओं में से एक है।

एनटीपीसी को चुना गया है
**'Great Place to Work'**
फिर एक बार

एनटीपीसी NTPC

एनटीपीसी लिमिटेड

www.ntpc.co.in

सीआईएन : L40101DL1975GOI007966

Follow us on: /ntpc1 | /ntpcltd1 | /ntpclimited | /company/ntpc

कालखण्ड है, जिसमें पाश्चात्य एवं भारतीय जीवन–दर्शन, व्यवहार व तत्वज्ञान में एक सतत विमर्श चल रहा है। इस मंथन का नवरसायन 'एकात्म मानववाद' ही है। यह विचार भारत की इस शताब्दी की एक प्रखर मनीषा का प्रतिनिधित्व करता है, जो भारत को भारत बनाए रखना चाहती है पर दुनिया से कटकर नहीं, जो भारत को आधुनिक बनाना चाहती है पर पश्चिमी की प्रतिकृति नहीं, जो जागतिक ज्ञानविज्ञान का उत्कर्ष चाहती है पर अध्यात्म को छोड़कर नहीं, जो संसार के नवीनतम प्रयोगों में योगदान करना चाहती है पर स्वयं को भूलकर नहीं। विवाद केवल तत्वों के अनुपात व प्रक्रिया का है। कुछ भारत को ज्यादा भारत व कम दुनियाँ बनाना चाहते हैं, कुछ दुनियाँ बनाने के आग्रह में भारत तत्व पर कम जोर देना चाहते हैं। किसी का आधुनिकता पर ज्यादा जोर है तो किसी का मौलिकता पर, किसी का अध्यात्म पर ज्यादा जोर है तो किसी का पदार्थवाद पर, किसी को नए प्रयोग का बहुत उत्साह है तो किसी को प्राचीन का ज्यादा आकर्षण है। इस सारे विवाद को अपने में समेटकर चलने की आकाँक्षा प्रत्येक भारतीय विचारक की रही है। सफल तो कोई भी नहीं हो पाया, क्योंकि हरेक का अपना–अपना आग्रह भी रहा है।

'एकात्म मानववाद' की पृष्ठभूमि के दो आयाम हैं : प्रथम, पाश्चात्य जीवनदर्शन तथा द्वितीय, भारतीय संस्कृति। 'मानववाद' मुख्यतः पाश्चात्य अवधारणा है तथा 'एकात्मता' भारतीय। पाश्चात्य प्रयोगों में लौकिक जीवन का वैशिष्ट्य है। अतः कहा जा सकता है कि पाश्चात्य 'मानववाद' के भारतीयकरण की प्रक्रिया की फलश्रुति है 'एकात्म मानववाद'।

**(क) पाश्चात्य जीवनदर्शन** : पश्चिम ने जिस प्रकार की तानाशाहियों, क्रूरताओं तथा अमानवीय मजहबी सत्ताओं का जीवन भोगा, उसकी तीव्र प्रतिक्रिया अवश्यम्भावी थी। अतः यूरोपीय पुनर्जागरण अपने पूर्ववर्ती जीवन का उग्रतापूर्वक निषेध करता है। ईश्वरीय सत्ता के विरुद्ध 'मानव' की प्रतिष्ठा, निरंकुश सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध 'व्यक्तिवाद' की प्रतिष्ठा, पांथिक विश्ववाद (Religious Universalism) के विरुद्ध लौकिक सत्ता (Secular State) की प्रतिष्ठा, ईश्वरीय दया के विरुद्ध मानवीय साहस की प्रतिष्ठा, रहस्यात्मक सच्चाई के खिलाफ विवेक की प्रतिष्ठा तथा स्थापित मान्यताओं के खिलाफ अनुसंधान की प्रतिष्ठा की कहानी यूरोपीय पुनर्जागरण एवं 'मानववाद' के उद्भव की कहानी है।

पाश्चात्य जीवन के पांथिक अंधविश्वास ने मानव के अध्यात्म तत्व को इतना रहस्यवादी, परमात्मावादी तथा ढोंगी बना दिया था कि प्रतिक्रियावश वह जड़वादी या भौतिकवादी हो गया। इस भौतिकवाद ने उसे असंवेदनशील यांत्रिकता की ओर धकेला तथा स्वभावतः प्रतिक्रियावादी बना दिया। इसीलिए 'मानववाद' जहाँ यूरोपीय पुनर्जागरण की संस्कृति है वहीं 'जड़वाद' उसकी विकृति। व्यक्तिवाद की विकृति है पूँजीवाद, मानवीय साहस की विकृति है साम्राज्यवाद, राष्ट्रवाद की विकृति है फासी एवं नाजीवाद, लौकिकता की विकृति है असंवेदनीय यंत्रवाद तथा उसके विवेक व अनुसंधान की विकृति है असंयमित भोगवाद।

दीनदयाल पाश्चात्य जीवन की श्रेष्ठता को स्वीकारते हैं। लेकिन उसकी विकृति के खिलाफ ज्यादा चौकस हैं, क्योंकि उनको लगता है कि पाश्चात्य के मोह में लोग उसकी विकृति को नजरंदाज कर रहे हैं, भारत को पश्चिम की अनुकृति बना रहे हैं तथा समाज में एक सम्भ्रम उत्पन्न हो रहा है। इस विषय में वे लिखते हैं :

"गांधीजी के जाने के बाद, राज्य सत्ता जिनके हाथ में आई, वे भारत की भाषा व भावना को न समझ पाए और न उसका वह सपना रख पाए, जो उसको अपना लगता।..... हमने अपने सम्पूर्ण जीवन को तथा समस्याओं को अंग्रेजीयत के चश्में से देखा। फलतः हमारी राजनीति, अर्थनीति, समाज व्यवस्था, साहित्य और संस्कृति पर अंग्रेजीयत की गहरी छाप है। भारतीयता केवल ऊपर–ऊपर दिखती है।..... विभिन्न राजनैतिक दल, वे समाजवादी हों या गैर–समाजवादी, यूरोप की राजनैतिक विचारधाराओं से ही प्रभावित हैं, वे भारत को किसी न किसी की अनुकृति बनाना चाहते हैं।"[6]

उपाध्याय का मत है कि पश्चिम की अच्छी बातों में भी पारस्परिक तालमेल का अभाव है : "राष्ट्रवाद, प्रजातंत्र, समाजवाद या समता समाजवाद, सभी के मूल में समता का ही भाव है, समता समानता से भिन्न है। इसे "Equitability" का पर्याय मान सकते हैं। इन तीन प्रवृत्तियों ने यूपरोप की राजनीति को प्रभावित किया है। ये सब आदर्श हैं, जो अच्छे हैं। मानव की दैवी प्रवृत्तियों में से इनका जन्म हुआ है। किन्तु अपने में कोई भी विचार पूर्ण नहीं हैं। इतना ही नहीं, इनमें से प्रत्येक आदर्श, व्यवहार में एक दूसरे का घातक बन जाता है। राष्ट्रवाद, विश्व शांति के लिए खतरा पैदा करता है। प्रजातंत्र, पूँजीवाद के मेल से शोषण का कारण बन गया। पूँजीवाद को समाप्त कर समाजवाद आया, तो उसने प्रजातंत्र तथा उसके साथ ही व्यक्ति की स्वतंत्रता की बली ले ली। अतः आज पश्चिम के सामने यह प्रश्न खड़ा है कि इन सभी अच्छी बातों का तालमेल कैसे बैठाया जाय?"[7]

इसलिए दीनदयाल उपाध्याय पश्चिम के अंधानुकरण के विरोधी हैं, लेकिन वे सभी मानवीय प्रयत्नों को आदर देना चाहते हैं, नवीन प्रयोगों में उनका उपयोग भी करना चाहते हैं, अतः सभी संशोधित अच्छी बातों को वे पाश्चात्य अवधारणा के आधार पर नहीं, मानवीय प्रयोगों की संकल्पना के आधार पर स्वीकार करना उचित समझते थे :

"विश्व का ज्ञान हमारी थाती है। मानव जाति का अनुभव हमारी सम्पत्ति है। विज्ञान किसी देश विशेष की बपौती नहीं। वह हमारे भी अभ्युदय का साधन बनेगा।"[8] वे पश्चिम के प्रगतिभूत 'परिणामों' की नकल नहीं करना चाहते थे। वे उन प्रगति के 'कारणो' का अध्ययन कर उनसे सीखने

**दीनदयाल पाश्चात्य जीवन की श्रेष्ठता को स्वीकारते हैं। लेकिन उसकी विकृति के खिलाफ ज्यादा चौकस हैं, क्योंकि उनको लगता है कि पाश्चात्य के मोह में लोग उसकी विकृति को नजरंदाज कर रहे हैं, भारत को पश्चिम की अनुकृति बना रहे हैं**

का आग्रह करते थे। उनकी पाश्चात्य दर्शन की ओर देखने की यह नजर तथा यूरोपीय साम्राज्यवाद के प्रतिकार में भारतीय अधिष्ठान वाले शुद्ध राष्ट्रीयतावाद के आग्रह का परिणाम यह हुआ कि पश्चिम की सब अच्छी बातें मानव जाति के खाते में जमा की गई तथा उनकी कमियों को पाश्चात्य जीवन–दर्शन की कमजोरियों के रूप में उल्लिखित किया गया। सामान्यतः पश्चिम के प्रतिक्रियावाद, जड़वाद, एकांगी दृष्टिकोण, जीवन का खण्ड–खण्ड विचार तथा उपभोगवाद की दीनदयाल उपाध्याय ने बहुत आलोचना की। पश्चिमी विचार हमें क्यों अग्राह्य है? उन कारणों को निम्न प्रकार बिन्दुबद्ध किया जा सकता है[9]:

(1) पश्चिम का विचार केवल ज्ञानेन्द्रियों पर ही निर्भर है। केवल ज्ञानेन्द्रियों से पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं होता, पूर्ण ज्ञान 'प्रज्ञा' से ही आता है। हमारे ऋषि–मुनियों ने अंदर से देखकर 'समग्रता का दर्शन' किया। हमारा केन्द्र 'पूर्णता' है, अन्यों का एकांगी।

(2) पश्चिम द्वारा उपस्थित किया गया 'व्यक्ति' बड़ा या 'समाज'?, यह सवाल ही गलत है। व्यक्ति या समाज अविभक्त है।

(3) 'प्रकृति विजय' की अवधारणा अहंवादी है। प्रकृति मातृवत् पूज्य है, उसका उच्छृंखल दोहन नहीं होना चाहिए। पूँजीवादी शोषण व समाजवादी तानाशाही इसी अहंकार का परिणाम है।

(4) 'समर्थ ही जीवित रहता है' (Survival of the fittest) की जीवशास्त्रीय अवधारणा की समाजशास्त्रीय मान्यता ने समाज में 'जंगल के कानून' की व्यवस्था उत्पन्न की। 'स्पर्द्धा' व 'संघर्ष' से विकास होता है, इस गलत अवधारणा का यही आधार है। यह असभ्यता है। सभ्यता के विकास का मतलब ही यह है कि 'कमजोर भी जीवित रह सके'। 'मत्स्य न्याय न रहे', इसीलिए राज्य की स्थापना हुई। समर्थ दुर्बल को समाप्त न कर सके, इसी के लिए हम समाज व्यवस्था व 'कानून के शासन' की स्थापना करते हैं।

(5) 'ईश्वर' व 'शैतान' का द्वैत, पश्चिम को बाइबिल की देन है। इसी द्वैतवादी भावना से डार्विन व मार्क्स निर्देशित हुए थे। दलीय संघर्षवादी जनतंत्र व वर्ग–संघर्षवादी साम्यवाद इसी मनोभाव की उपज हैं।

(6) मनुष्य की दैवी सम्पदा की उपेक्षा कर उन्होंने मानव को एक 'स्वार्थी मनुष्य' माना है। उनका राज्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, सब 'Selfinterest' पर आधारित हैं। यहाँ तक कि परमार्थिक भावों को भी इसी दृष्टि से स्वीकार किया है।

(7) पश्चिम, नई दुनियाँ में साम्राज्यवादी उत्पीड़न का अपराधी है। साम्राज्यवादी उत्पीड़न एवं शोषण के बल पर यूरोप की औद्योगिक क्रांति सफल हुई। जो पश्चिम की नकल करेगा, उसे शोषणवादी उद्योगवाद को अपनाना होगा।

(8) राष्ट्रीय 'राज्य', संवैधानिक 'राज्य', समाजवाद तो 'राज्यवाद' ही है, इन कल्पनाओं ने समाज की अनौपचारिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को आहत किया। राजनीति सर्वग्रासी बन गई।

(9) पश्चिम का विचार प्रतिक्रियात्मक है, चर्च राज्य की प्रतिक्रिया में लौकिक राज्य, ईश्वरवाद की प्रतिक्रिया में मानववाद, निरंकुश समाज व्यवस्था की प्रतिक्रिया में व्यक्तिवाद तथा शोषण की प्रतिक्रिया में समाजवाद का प्रणयन हुआ, अतः यह मानव के विधायक विवेक का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। प्रतिक्रियावश समाज की पूर्व स्थितियों में सम्पन्न हुई मानवीय सकारात्मकता को भी निषेध करता है, यथा, मानव को संवेदनशील बनाने में 'धर्म' की निर्णायक भूमिका रही है। अध्यात्मवाद का निषेध भी अंधविश्वास या ईश्वरीय रहस्यवाद की अतिरेकी प्रतिक्रिया है, जिसने उसे जड़वादी बना दिया।

(10) भौतिकवाद में से स्वतंत्रता, समानता व भ्रातृत्व की प्रेरणा नहीं मिल सकती, इसीलिए मेजिनी द्वारा कल्पित 'मानवतावादी यूरोपीय राष्ट्रवाद' आज तक भी व्यवहार में नहीं आ सका तथा स्वयं यूरोप, अमेरिका व रूसी साम्राज्यवाद में विभक्त हो गया।

दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत किया गया पश्चिम का उपर्युक्त विश्लेषण, आधुनिक गांधीवादी विचार दृष्टि के अनुकूल है। पश्चिमी जगत के प्रसिद्ध गांधीवादी विलफ्रेड वेलॉक ने गांधीजी के विषय में लिखा है :

"गांधीजी पश्चिमी सभ्यता की निंदा प्रधानतः इस कारण करते थे, क्योंकि वह व्यक्तिगत सम्पत्ति व शक्ति के लिए मनुष्य को यंत्र के समान बनाकर मानवीय श्रम का शोषण करती है। इसके परिणामस्वरूप एक ऐसा समाज उत्पन्न होता है, जिसमें परस्पर विरोधी वर्ग अपने विरोधी आदर्शों के द्वारा हिंसक क्रांति तथा प्रति–क्रांति में जुटे रहते हैं। इस पदार्थवाद में से वस्तुओं और सेवाओं की निरंतर पूर्ति के लिए एक भयंकर होड़ (स्पर्धा), अन्तर्राष्ट्रीय तनाव तथा अंत में विश्वयुद्ध और विश्वक्रांति का जन्म होता है।"[10] पश्चिम के प्रति इस दृष्टिकोण को जवाहरलाल नेहरू अतिवादी मानते थे। उन्होंने अपने एक पत्र में महात्मा गांधी को लिखा था :

"मैं सोचता हूँ कि आप पश्चिम की समस्या को बहुत गलत आँकते हैं और उसकी बहुत–सी कमियों को जरूरत से ज्यादा महत्व देते हैं। आपने कहीं पर कहा है कि भारत को पश्चिम से कुछ नहीं सीखना है और भूतकाल में वह बुद्धिमत्ता के चरम शिखर पर पहुंच गया था। मैं इस दृष्टिकोण से एकदम असहमत हूँ और यह नहीं सोचता कि तथाकथित रामराज्य पुराने जमाने में बहुत अच्छा था और न मैं फिर उसे वापस लाना चाहता हूँ। मेरे ख्याल में पश्चिमी या औद्योगिक सभ्यता की भारत में अवश्य विजय होगी। हो सकता है कि उसमें बहुत–सी तब्दीलियाँ करनी पड़े और नई चीजें जोड़नी पड़े, लेकिन फिर भी वह मुख्यतः औद्योगिकता पर आधारित होगी। आपने औद्योगिकता की बहुत–सी जाहिरा बुराइयों की कड़ी आलोचना की है और उसके गुणों की ओर मुश्किल से ध्यान दिया है। इन बुराइयों को हर कोई जानता है। पश्चिम के ज्यादातर विचारकों की यह राय है कि ये कि बुराइयों उद्योगवाद की वजह से नहीं है, बल्कि उस पूँजीवादी तरीके की वजह से है जो कि दूसरों के शोषण पर निर्भर करता है"[11]

दीनदयाल उपाध्याय का हिन्दुत्वादी तथा राष्ट्रवादी मन, पश्चिम के विचारों के खिलाफ जितना उसकी तर्कसंगत बुराइयों के कारण था, उतना ही उसकी विदेशियत के कारण भी था। साथ ही जवाहरलाल नेहरू की पश्चिम प्रभावित 'लोकतांत्रिक समाजवाद' की अवधारणा के आधार पर चलने वाली कांग्रेस के समानांतर एक राष्ट्रवादी विकल्प उत्पन्न करना था, अतः उपाध्याय पश्चिम की विकृति के प्रति ज्यादा सावधान व मुखर

हो गए। उन्होंने पश्चिम के पूर्ण विचार को ही मानवीय विकृति में से उत्पन्न विचार घोषित कर दिया। उन्होंने कहा, "यदि संघर्ष है तो वह प्रकृति का अथवा संस्कृति का द्योतक नहीं है, विकृति का द्योतक है। जिस मत्स्य न्याय या जीवन संघर्ष को पश्चिम के लोगों ने ढूँढ निकाला, उसका ज्ञान हमारे दार्शनिक को था। मानव जीवन में काम, क्रोधादि षट्विकारों को हमने स्वीकार किया है, किन्तु इन सब प्रवृत्तियों को हमने अपनी संस्कृति या शिष्ट व्यवहार का आधार नहीं बनाया।"[12] षट्विकारों के साथ पश्चिम द्वारा स्वीकृत मानवीय प्रवृत्तियों को निम्न प्रकार समीकृत किया जा सकता है:

काम – उपभोगवाद
क्रोध – प्रतिक्रियात्मक विचार
मद – प्रकृति पर विजय तथा भौतिकवादी मानववाद
लोभ – स्वार्थाधारित स्पर्धा
मोह – लोलुपता (अतिवादी महत्वाकांक्षाएँ)
मत्सर – वर्गवादी संघर्ष (शक्तिशाली की विजय)

एक विशेष परिस्थिति में विचार करने के कारण पश्चिम का ऐसा कृष्णपक्षीय विवेचन उपाध्याय ने किया, लेकिन वे शुक्ल पक्ष से अनभिज्ञ नहीं थे। स्वतंत्रता, समानता व बन्धुता का आदर्श, विवेक एवं अनुसंधान का आधार एवं साहसिक प्रयोगवाद, पश्चिम द्वारा अर्जित श्रेष्ठत्व के लिए कारणीभूत है। इन घोषित श्रेष्ठताओं को पूरी तरह से प्राप्त न कर सकने के जो अनेक कारण हैं; उपाध्याय मानते हैं कि उनमें से बड़ा कारण यह है कि मानव की विकारमूलक प्रवृत्ति को उन्होंने, इन अच्छे लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रक्रिया के रूप में स्वीकार कर लिया, परिणामस्वरूप इस प्रवृत्ति ने उनके हर अच्छे आदर्श को परस्पर लड़वा दिया। अतः पश्चिम से व्यवहार करते समय हमें चौकस रहना चाहिए। वह व्यवहार भी बराबरी के स्तर पर होना चाहिए। हमें अपने 'स्वत्व' तथा सांस्कृतिक मूल्यों के अधिष्ठान पर विभिन्न प्रयोग करके मानवीय विकास की प्रक्रिया में सहभागी बनना चाहिए, किसी पर अवलम्बित नहीं रहना चाहिए। अतः वे कहते हैं :

"निःसंदेह आज विश्व से हम कुछ लें, परन्तु विश्व ऐसी स्थिति में नहीं है कि हमारा कुछ मार्गदर्शन कर सके। वह तो स्वयं चौराहे पर है। ऐसी अवस्था में हम उससे किसी प्रकार का मार्गदर्शन नहीं पा सकते। हमें तो यह सोचना चाहिए कि अब तक की विश्व की प्रगति को देखते हुए कहीं ऐसी संभावना है या नहीं कि हम उसकी प्रगति में अपना योगदान कर सकें? विश्व की प्रगति का अध्ययन कर लेने के बाद हम भी उन्हें कुछ दे सकते हैं, यह विचार हमें विश्व का अंग बनकर करना चाहिए। हम केवल स्वार्थी न बनकर, विश्व की प्रगति में सहयोगी बनें।

यदि हमारे पास कोई वस्तु है, जिससे कि विश्व का लाभ होगा तो वह देने में हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। मिलावट के युग के अनुरूप, विशुद्ध विचारों को विकृत करके उनका मिश्रित रूप न लें, बल्कि उनको सुधारकर तथा मंथन करके ग्रहण करना चाहिए। हमें विश्व पर बोझ बनकर नहीं, उसकी समस्याओं के छुटकारे में सहायक बनकर रहना चाहिए। हमारी परम्परा और संस्कृति विश्व को क्या दे सकती है, यह हमें विचार करना है"[13]

पश्चिम की प्रगति एवं विचार प्रवाह के प्रति उपाध्याय का उपर्युक्त चिंतन 'अपनी अहमियत' का इजहार करवाने वाला है। वे पश्चिम को मानवीय सभ्यता की मुख्यधारा मानकर उसमें डूबने को तैयार नहीं हैं। अपने राष्ट्रीय स्वत्व के साथ मानव सभ्यता की धारा को समृद्ध करने की मानसिकता से उपाध्याय ने भारतीय संस्कृति को अपने चिंतन का आधार बनाया। उसी आधार पर उनका 'एकात्म मानववाद' विकसित हुआ।■

*manthanmagzin@gmail.com*
संपर्क–9868219784

**संदर्भ संकेत**

1 *बी.एन. गांगुली, ''आइडियोलाजीज एंड दि सोशल साइंसेस'', अध्याय–दो, ''ह्यूमैनिज्मः ए पैरेंट आइडियोलॉजी'', आर्नोल्ड हनीमैन पब्लिशर्स (इंडिया) प्रा. लि. पृ. 14–55*
2 *स्वामी विवेकानंद, 'स्वाधीन भारत जय हो', श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, अध्याय–2: 'हमारी वर्तमान समस्या', पृ. 21, 22, 24 व 25। (स्वामी जी ने उपरोक्त निबंध 14 जनवरी, 1899 से प्रकाशित होने वाले रामकृष्ण मिशन के पाक्षिक पत्र 'उद्बोधन' की भूमिका के तौर पर लिखा था।)*
3 *क्र. 2, अध्याय–6: 'मेरे वीर देशवासियों के प्रति', पृ. 45*
4 *दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखा गया अप्रकाशित लेख 'स्वतंत्रता के साधन और सिद्धि', दीनदयाल शोध संस्थान की फाइल से प्राप्त दिल्ली।*
5 *श्री अरविंद, 'एशिया की भूमिका' वंदेमातरम, 9 अप्रैल, 1909 (रवींद्र, लाल कमल, अरविंद सोसाइटी, पाडिचेरी–605002, से उद्धृत,पृ. 67)।*
6 *क्र. 4, पृ. 3*
7 *एकात्म दर्शन, दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली, अध्याय–1: राष्ट्रवाद की सही कल्पना, पृ. 10,*
8 *भारतीय जनसंघः घोषणाएं व प्रस्ताव, भाग–1, विट्ठलभाई पटेल भवन, रफी मार्ग, दिल्ली, भारत वर्ष, 'सिद्धांत और नीतियां', पृ. 4*
9 *बौद्धिक पंजिका, राजस्थान, 4 जून, 1964 को संघ शिक्षा वर्ग में दिए गए बौद्धिक वर्ग के आधार पर*
10 *विल्फेड वेलॉक, 'गांधीः एक सामाजिक क्रांतिकारी', अखिल भारत सर्व सेवा संघप्रकाशन, राजघाट, काशी, पृ. 10, (गांधीः ऐज ए सोशल रिवोल्यूशनरी', पुस्तक का चंद्रकला मित्तल द्वारा हिंदी अनुवाद)।*
11 *इलाहाबाद से 11 जनवरी, 1928 को महात्मा गांधी के नाम लिखा गया पं. नेहरू का पत्र। जवाहर लाल नेहरू वांङमय, तृतीय खंड, पृ. 14, प्रकाशकः सस्ता साहित्य मंडल, एन–77, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली–110001*
12 *क्र. 7, अध्याय–2, 'एकात्म मानववाद', पृ. 18*
13 *वही, अध्याय–1, 'राष्ट्रवाद की सही कल्पना', पृ. 11*

# विविध पंथानुगामी भारतीय अध्यात्म

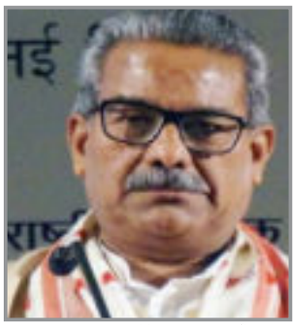

डॉ. कृष्ण गोपाल

दो वर्ष पूर्व, 2017 में, एक समाचार आया था कि स्पेन का एक राज्य केटालोनिया (Catalonia) अब स्पेन के साथ रहना नहीं चाहता। इस विषय पर वहाँ जनमत संग्रह हुआ। स्पेन के साथ न रहनेवालों की संख्या 90 प्रतिशत से अधिक रही। 2014 में यही स्थिति स्कॉटलैंड की भी बनी, जहाँ के नागरिकों ने कहा कि हम यूनाइटेड किंगडम (यू.के.) के साथ नहीं रहना चाहते। जनमत संग्रह हुआ और यू.के. के साथ न रहने के पक्ष में 45 प्रतिशत लोगों ने मतदान किया। किंतु, स्कॉटलैंड के लोग इस बार पूरी तैयारी कर रहे हैं कि वे भविष्य में यू.के. के साथ नहीं रहेंगे। गोर्ब्याचोब के समय, 1991 में यूएसएसआर बिखर गया और छोटे–छोटे अनेक देश अलग हो गए। वे रूस के साथ रहना नहीं चाहते थे।

विश्व में और भी बहुत से उदाहरण हैं, जहाँ देश टूट रहे हैं। असहिष्णुता के कारण अथवा छोटी–सी भिन्नता के कारण वे स्वयं को अलग देश मान बैठते हैं। उनको भावनात्मक रूप से एक रखने का भाव वहाँ नहीं है। किंतु जब वे लोग भारत की ओर देखते हैं, तब उनको ध्यान में आता है कि असीमित और अनंत विविधताओं वाला देश भारत किस प्रकार एक रहता है। भारत की स्वतंत्रता के पूर्व चर्चिल साहब यह घोषणा करते थे कि यह देश (भारत) कुछ वर्षों के अंदर ही बिखर जाएगा। किंतु उनकी भविष्यवाणी मिथ्या साबित हुई, देश और मजबूती के साथ उभरा।

अब यह प्रश्न उठता है कि इतनी भाषाओं, बोलियों, संप्रदायों, मत–पंथों, भौगोलिक विविधताओं वाला यह देश पश्चिम की तरह बिखरता क्यों नहीं? कौन सी बात है, जो इसको एक बनाकर रखती है। इसका सरल सा उत्तर है भारत का 'अध्यात्म'। भारत का अध्यात्म एक विशिष्ट प्रकार की शक्ति रखता है और यह हजारों वर्षों से भारत के जनमानस में गहराई तक बैठा हुआ है

अब यह प्रश्न उठता है कि इतनी भाषाओं, बोलियों, संप्रदायों, मत–पंथों, भौगोलिक विविधताओं वाला यह देश पश्चिम की तरह बिखरता क्यों नहीं? कौन सी बात है, जो इसको एक बनाकर रखती है। इसका सरल सा उत्तर है भारत का 'अध्यात्म'। भारत का अध्यात्म एक विशिष्ट प्रकार की शक्ति रखता है और यह हजारों वर्षों से भारत के जनमानस में गहराई तक बैठा हुआ है। उस अध्यात्म की परंपरा को यहाँ के लोग किसी–न–किसी रूप में सँभाल कर लेकर आए हैं। सभी भारतीय संप्रदाय अध्यात्म को लेकर ही चलते हैं, अध्यात्म को समझते हैं, उसी अध्यात्म को जीवन में जीते हैं, अध्यात्म से प्रकाश पाते हैं और अध्यात्म के संरक्षण–संवर्धन के लिए प्रयत्न भी करते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'अध्यात्म' भारत की आत्मा है। अध्यात्म के सहारे यह देश जीता है, अध्यात्म के सहारे यह कुरीतियों, ढोंग, पाखंड से लड़ता है तथा अध्यात्म के सहारे बड़े–से–बड़े विदेशी आक्रमणों के विरुद्ध मोर्चा भी लगा देता है। यह अध्यात्म पाश्चात्य जगत के रिलिजन या पाश्चात्य जगत की Spirituality नहीं है। इसको समझने के लिए भारत के वाङ्मय, भारत की महान् परंपरा और भारत के इतिहास तथा भारत के आध्यात्मिक लोगों को समझना होगा। हमारे देश की आध्यात्मिकता हमारी ऐसी विशेषता है जो हमको विश्व में एक विशिष्ट स्थान देती है। विश्व के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद आध्यात्मिक भाव की सृष्टि करते हैं। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यह 'आध्यात्मिक–भाव' क्या है?

हमारी सनातन मान्यता के अनुसार हमारा विश्वास है कि यह संपूर्ण जगत् एक ईश्वरीय सत्ता से व्याप्त है। यह ईश्वरीय सत्ता सभी के अंदर, सर्वदूर, सर्वत्र व्याप्त है। संपूर्ण सृष्टि इस ईश्वरीय सत्ता का विस्तार मात्र ही है। यह मौलिक दर्शन भारतीय मनीषा को एक अद्भुत एकात्मबोध से आप्लावित कर देता है। जब वैदिक ऋषि कहता है *'ईशा वास्यमिदं सर्वं यित्कंचित् जगत्यां जगत'* तब उसका यह भाव रहता है कि वह ईश्वरीय तत्त्व हमारे, आपके तथा सभी के अंदर समानरूप से व्याप्त है। प्रज्ञापुरुषों ने अपनी आध्यात्मिक साधना के उत्कर्ष में यह साक्षात्

किया कि वह ब्रहमतत्त्व और आत्मतत्त्व एक होते हुए भी सभी के अंदर समान रूप से उसी प्रकार विराजमान रहता है जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिंब हजारों जल कलशों में समान रूप से दिखता है अथवा वही समुद्र का जल सभी नदियों में दौड़ता हुआ समुद्र की ओर जाने का प्रयत्न करता है। एक होते हुए भी वह सभी के अंदर विराजमान रहता है अर्थात् *'एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः'*। इस मौलिक तत्त्व–दर्शन पर अनेक प्रकार की व्याख्याएँ तथा चर्चाएँ होती रहीं, किंतु यह कोई मात्र पुस्तकीय ज्ञान नहीं रहा वरन् आध्यात्मिक लोगों ने साधना की उत्कर्षावस्था में इस एकात्म–बोध को प्रत्यक्ष अनुभव किया, साक्षात् भी किया।

भारत की 'सर्वव्यापी– सर्वशक्तिमान– ईश्वर' की दृष्टि और समझ पाश्चात्य जगत के एकेश्वरवाद से बहुत भिन्न है। पश्चिमी जगत में उपजे रिलिजंस (Religion) की यही मान्यता रही कि वह गॉड एक है और वह कहीं सातवें आसमान पर रहता है, वह धरती पर नीचे नहीं आता तथा यह मानना कि हमारे अंदर भी वही ईश्वर विद्यमान है, उनके मूल सिद्धांतों के विपरीत है। यह ईशनिंदा (Blasphany) या कुफ्र है, इसकी सजा मृत्युदंड ही है।

मंसूर–अल–हल्लाज (858–922) फारस का एक विद्वान् कवि था। वह साधक भी था और कहता था कि जब मैं साधना करता हूँ तब मैं स्वयं उस ईश्वर का दर्शन करता हूँ। वह मेरे स्वयं के अंदर ही है। उसको वर्षों तक जेल में रखा और अंत में उसकी हत्या कर दी गई। दाराशिकोह (शाहजहाँ का बड़ा पुत्र) भी यही कहता था कि वह ईश्वरीय तत्व मेरे अंदर है। औरंगजेब ने कहा कि यह काफिर हो गया है। यह अल्लाह के साथ साझेदारी करना चाहता है। यह तो कुफ्र है, यह स्वीकार नहीं। दाराशिकोह की हत्या कर दी गई।

इस प्रकार यह समझना आवश्यक है कि

*महात्मा बुद्ध*

भारत का अध्यात्म पश्चिमी जगत की धारणाओं से सर्वथा भिन्न है।

हम अपने इस आध्यात्मिक भाव के कारण ही कहते हैं 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' क्योंकि सभी परमात्मा के अंश हैं, अतः कोई भी दुःखी क्यों रहे? इस आध्यात्मिक भाव के कारण ही हमने सभी को परमात्मा का अंश माना और कहा कि सारी पृथ्वी परमात्मा के एक परिवार के समान ही तो है–*'वसुधैव कुटुम्बकम्*। अपने आध्यात्मिक भाव से ही भारतीय समाज ने विश्व के सभी लोगों के विचारों का सम्मान करते हुए कहा कि किसी भी मार्ग से जाइए आप उसी परम तत्त्व की ओर ही पहुँचेंगे–*'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति* इस भाव के कारण भारत के सभी संप्रदाय एक–दूसरे का सम्मान करते हैं।

भारत का यह आध्यात्मिक दर्शन लोगों के अंदर सभी श्रेष्ठ–भावों की सृष्टि एवं अभिवृद्धि करता है। दया, प्रेम, करुणा, श्रद्धा, निष्ठा, त्याग, क्षमा, धैर्य आदि गुणों का विकास आध्यात्मिक भाव के कारण स्वाभाविक ही हो जाता है। आध्यात्मिक भाव शनैः–शनैः प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर की यात्रा को गति देता है। भारत का अध्यात्म कितनी भी विविधताओं और भिन्नताओं में एकता और एकात्मता के सूत्र स्थापित करता है। कितने भी संघर्षों में समन्वय का मार्ग ढूँढ़ता है तथा हर क्षण सामंजस्य बिठाने की कोशिश करता है। हम कह सकते हैं कि भारत की अनंत विविधताओं में भी एकात्म–तत्व की जो सृष्टि करता है वह हमारा अध्यात्म ही है।

इस आध्यात्मिक भाव के कारण ही भारत किसी भी कठिन परिस्थिति में मार्ग ढूँढ़ता है तथा किसी भी बुराई, कुरीति, विकृति अथवा बाह्य संकट के विरुद्ध मोर्चा सँभालता है। भारत के अंदर समय–समय पर उत्पन्न हुए संप्रदायों की सृष्टि और विकास के पीछे यही भूमिका प्रमुख रही है। हम यहाँ कुछ पंथों, संप्रदायों के उद्भव की पृष्ठभूमि तथा उनकी भूमिका पर विचार करते हैं।

**बौद्धमत (बौद्ध धर्म) का उदय** : 2500 वर्ष पूर्व एक समय ऐसा आया, जब वैदिक परंपरा माननेवाले लोगों द्वारा कर्मकांड का अतिरेक होने लगा। लंबे दीर्घकालीन यज्ञ होने लगे। कुछ तो बड़े व्यय साध्य यज्ञ थे। समाज में ऊँच–नीच की भावना गहरी बैठने लगी। मूल आध्यात्मिक दर्शन उपेक्षित और दुर्लक्ष्य होने लगा। कठिन पूजा पद्धति से समाज ऊबने लगा। सामान्य जन संस्कृत भाषा से अनविज्ञ हो गया, यज्ञ के नाम पर हिंसा बढ़ गई। तब करूणा, प्रेम, दया, ममता, त्याग, अपरिग्रह, मानव कल्याण आदि महान् गुणों का आह्वान करते हुए भगवान बुद्ध खड़े हुए। बुद्ध भगवान् की आधारभूमि आध्यात्मिक ही थी। भगवान् बुद्ध ने सनातन धर्म के मूल तत्त्वों को धम्म में समाहित किया। जिन सद्गुणों की

**हम अपने इस आध्यात्मिक भाव के कारण ही कहते हैं 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' क्योंकि सभी परमात्मा के अंश हैं, अतः कोई भी दुःखी क्यों रहे? इस आध्यात्मिक भाव के कारण ही हमने सभी को परमात्मा का अंश माना और कहा कि सारी पृथ्वी परमात्मा के एक परिवार के समान ही तो है –'वसुधैव कुटुम्बकम्'**

बात वैदिक ऋषियों ने कही थी उन सभी सद्‌गुणों के लिए बुद्ध खड़े थे। बुद्ध की क्रांति विशुद्ध आध्यात्मिक क्रांति थी। बुद्ध की आध्यात्मिक लहरों ने अनेक देशों की सीमाओं के अंदर प्रवेश किया। ईशा के पूर्व बौद्ध मत अपने प्रचंड आध्यात्मिक दर्शन के साथ विश्व की लगभग आधी जनसंख्या को अपने आलिंगन में लेकर खड़ा था। बुद्ध की आध्यात्मिक साधना का अंतिम गंतव्य निर्वाण ही था। बुद्ध ने उन परिस्थितियों में भारत के अध्यात्म के आधार पर एक नई दिशा दी और उनके अनुयायियों ने उसको बौद्धमत का नाम दिया। दलाई लामा कहते हैं कि बौद्धमत भारत के आध्यात्मिक वटवृक्ष की एक शाखा ही है।

श्रीमद् आद्यशंकराचार्य का प्राकट्य भारतीय अध्यात्म के इतिहास की विलक्षण घटना रही। ईसा से भी लगभग 300 वर्ष पूर्व भारत की दक्षिण दिशा में केरल से निकला यह युवक भारत की आध्यात्मिक परंपरा का महातेजस्वी व्यक्तित्व था। अल्पायु में ही वे संन्यास लेकर, हिंदुओं के प्रमुख ग्रंथों (गीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र) का भाष्य लिख, सभी कुरीतियों, ढोंग, पाखंड के विरुद्ध शंखनाद करते हुए केदारनाथ–बद्रीनाथ तक जा पहुँचे। पूर्व–पश्चिम दिशाओं में विजय प्राप्त करते हुए देहत्याग के लिए पुनः केदारनाथ आ गये। उनकी यह विजय एक आध्यात्मिक विजय थी। उन्होंने वैदिक आध्यात्मिक दर्शन की युगानुकूल व्याख्या की। अपने ज्ञान, तर्क–निपुणता, तीक्ष्ण बुद्धि तथा विलक्षण शील के बल पर भारत के सनातन वैदिक दर्शन के सबसे प्रबल समर्थक सिद्ध हुए। उन्होंने उस समय नाना प्रकार से प्रचलित बहत्तर पूजा पद्धतियों को पाँच प्रकार की पद्धतियों में समेटकर समाज पर बड़ा उपकार किया। श्रीशंकराचार्य का परम तेजस्वी आश्रय पाकर हिंदुत्व का अध्यात्म अपने प्रचंड सूर्य की तरह भारतीय परिदृश्य में अपनी पूर्ण प्रखरता के साथ पुनः प्रकाशित होने लगा।

श्रीशंकराचार्य ने वैदिक सिद्धांतों की युगानुकूल व्याख्या की और अत्यल्पायु में ही अपने प्रचंड ज्ञान के बल पर अध्यात्म की पताका को ऊँचाई तक लहरा दिया। आचार्य शंकर के बाद हिंदुत्व पुनः किसी भी चुनौती के लिए सिद्ध हो चुका था। यद्यपि

**श्री शंकराचार्य ने वैदिक सिद्धांतों की युगानुकूल व्याख्या की और अत्यल्पायु में ही अपने प्रचंड ज्ञान के बल पर अध्यात्म की पताका को ऊँचाई तक लहरा दिया। आचार्य शंकर के बाद हिंदुत्व पुनः किसी भी चुनौती के लिए सिद्ध हो चुका था**

श्रीशंकराचार्य ने कोई नया मत प्रारंभ नहीं किया था किंतु उनके दर्शन को शांकर मत के रूप में बहुत ख्याति मिली। श्रीशंकराचार्य ने सभी के अंदर एक ही आत्मा अर्थात् 'सर्वात्मैक्य' का संदेश दिया।

**इस्लाम का आक्रमण और भारत में संप्रदायों का उदय** : भारत में इस्लाम का आक्रमण अपने आप में एक बड़ी ऐतिहासिक घटना थी, जो एक बड़ी चुनौती के रूप में भारत में आई थी। 12वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी तक भारत के इतिहास में यह एक ऐसा गंभीर संकट था, जिसने संपूर्ण भारतीय जनमानस के राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक सामाजिक ताने–बाने को बुरी तरह झकझोर कर बेहद कमजोर बना दिया था। भारत में आने के पूर्व इस्लाम और भी कई देशों को पूरी तरह निगल चुका था, अब उनका लक्ष्य भारत था। इस कठिन समय में भारत के अध्यात्म ने मोर्चा लिया और देश के सभी भागों में अनेक मतों और संप्रदायों की सृष्टि हुई। इन सभी संप्रदायों ने भारतीय समाज की उसके अध्यात्म के साथ रक्षा की।

**श्रीरामानुजाचार्य का श्री संप्रदाय** : 12वीं–13वीं शताब्दी में दक्षिण के श्रीरामानुजाचार्य ने भारतीय अध्यात्म के विशुद्ध, निर्मल भक्तिभाव का आह्वान किया। वे भारत में भक्ति–आंदोलन के प्रणेता माने जाते हैं। उन्होंने ईश्वर के सर्वव्यापी, करुणामय स्वरूप का प्रचार किया। उनके आराध्य श्री विष्णु थे। श्रीसंप्रदाय की स्थापना करने वाले श्रीरामानुजाचार्य ने विलक्षण ज्ञान प्राप्त किया और सरल, सुगम्य भक्ति के प्रचार में वे लग गए। उन्होंने स्थापित किया कि आध्यात्मिक साधना में जाति का कोई महत्त्व नहीं है। सभी को भक्ति का अधिकार समान है–सर्वे प्रपत्तेरधिकारणो मताः। श्रीरामानुजाचार्य के हजारों शिष्य भारत के इस आध्यात्मिक–भक्तिभाव को लेकर देशभर में फैल गए। भक्ति की उत्ताल तरंगें दक्षिणी भारत से उत्तर भारत की ओर उठने लगीं। देखते–ही–देखते देश के प्रत्येक भाग में नए–नए संप्रदायों का उदय होने लगा। प्रत्येक भाषा, क्षेत्र, जाति, वर्ण से भक्तिवान् लोग आगे आने लगे। भक्तिभाव का सहारा लेकर उन्होंने सभी भेदभावों को सर्वथा अमान्य कर दिया। श्रीरामानुजाचार्य के बाद भक्ति–आंदोलन संपूर्ण देश में विद्युत की चमक की तरह प्रदीप्त हो उठा। उनके अनुयायियों ने उनके मत को श्री संप्रदाय का नाम दिया। भक्ति के द्वार सभी के लिए खुल गए।

**श्रीरामानंदाचार्य का वैष्णव संप्रदाय** : श्रीरामानुजाचार्य की शिष्य परंपरा में श्रीरामानंदाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। ज्ञान और साधना में अप्रतिम स्थान रखने वाले श्रीरामानंद के वैष्णव संप्रदाय ने भारत की आध्यात्मिक चेतना को नई दिशा दी। वे निर्गुण और सगुण के समन्वयक थे। आध्यात्मिक शास्त्र और साधना अभी तक संस्कृत के मंत्रों या ऋचाओं में ही संग्रहित थी। श्रीरामानंदाचार्य ने स्थानीय भाषाओं को मान्यता दी। ब्राह्मणों के साथ अब्राह्मणों को शिष्य बनाया। उनके शिष्यों में जो अब्राह्मण कबीर और रैदास थे, वे बहुत अधिक प्रतिष्ठा पाए। अध्यात्म साधना समाज के सभी वर्गों में पहुँचने लगी। काशी का पंचगंगा घाट आध्यात्मिक साधना की तपःस्थली बन गया।

**संत कबीर और कबीर पंथ** : स्वामी रामानंद के शिष्यों में संत कबीर मुसलमान के घर में पालित वैष्णव थे। समाज के वंचित, उपेक्षित वर्ग को दमदार वाणी और मंच देने का कार्य कबीर साहब ने किया। ईश्वर भक्तों के लिए वस्त्र बुनना और परिश्रम करके परिवार चलाना यह कबीर की साधना का संदेश रहा। जिनको किसी भी कारण समाज में उपेक्षा थी वे कबीर साहब के निकट आ गए। कबीर साहब, स्वामी

# At the Heart of Our Busine

## Our Passion to Energize Moves India Forward

Oil India Limited (OIL) is India's leading Navratna National Oil & Gas Company with strong Pan-India presence and a share of over 9% of

OIL's Mission is to be "The fastest growing energy company with global presence providing value to stakeholders."

OIL has been *Conquering Newer Horizons* with:

- Overseas E&P assets and business in Libya, Gabon, Nigeria, Yemen, Venezuela, USA, Mozambique, Myanmar, Bangladesh & Russia
- Foray into Renewable Energy - Total installed capacity of 188.10 MW (comprising of 174.10 MW Wind and 14 MW Solar Energy Pro
- International Credit Ratings- Moody's "Baa2" (stable) {higher than sovereign rating} and Fitch Rating "BBB-" (Stable) {equivalent to

#GiveItUp

Feel the Joy of Giving

Corp

Registere

Reach

ऑयल इंडिया लिमिटेड

( भारत सरकार का उद्यम )

**Oil India Limited**

(A Government of India Enterprise)

*Conquering Newer Horizons*

# ness is a Nation's Progress

9% of the country's crude oil and natural gas production.

Russia.

gy Projects).

ent to sovereign rating}.

***Corporate Office :*** Oil India Limited, Plot No. 19, Near Film City, Sector 16A, Noida, District - Gautam Budh Nagar, Uttar Pradesh-201301, India, Phone : +91-120-2419000, 2419200

***stered Office :*** Oil India Limited, Duliajan, Dist. Dibrugarh, Assam-786602, Phone : +91-374-2804510, 2800587, 2804901

Reach us at : www.oil-india.com | Also follow us on : | CIN : L11101AS1959GOI001148

**श्री रामानंदाचार्य ने स्थानीय भाषाओं को मान्यता दी। ब्राह्मणों के साथ अब्राह्मणों को शिष्य बनाया। उनके शिष्यों में जो अब्राह्मण कबीर और रैदास थे, वे बहुत अधिक प्रतिष्ठा पाए। अध्यात्म साधना समाज के सभी वर्गों में पहुँचने लगी। काशी का पंचगंगा घाट आध्यात्मिक साधना की तप:स्थली बन गया**

रामानंद से दीक्षित और राम के उपासक थे। उनके सर्वव्यापी राम बिलकुल अनूठे थे। धर्म के नाम पर समाज में घर कर गए ढोंग–पाखंड के विरुद्ध प्रहार करने में कबीर साहब ने संकोच नहीं किया। कबीर साहब के लिए उच्च वर्ण या कर्मकांड के स्थान पर शुचितापूर्ण जीवन और निर्मल भक्ति महत्त्वपूर्ण थी। करोड़ों लोग कबीरपंथी बनकर उनके भजन, शबद, दोहे गाने लगे। कबीर साहब ने भक्ति और अध्यात्म का सहारा लेकर पाखंडियों को जमकर लताड़ा। कबीर पंथ ने लाखों लोगों को इस्लाम की ओर जाने से रोक लिया। हिंदू समाज का दुर्बल वर्ग अब निराश्रित नहीं था। कबीर साहब ने उन्हें अध्यात्म की शक्ति दे दी थी।

**रैदासी पंथ और संत रविदास** : संत रविदास भी स्वामी रामानंद के शिष्य ही थे। इनके परिवारी जन मरे हुए जानवरों के चमड़े का काम करते थे। स्वामी रामानंद के शिष्यत्व के बाद संत रैदास जी ने स्वयं को प्रभु के साथ जोड़ लिया। रैदास जी ने कहा–'तुम चंदन हम पानी', अर्थात् प्रभुजी आप तो मूल्यवान चंदन हैं और हम तो निर्मूल्य पानी हैं। किंतु प्रभुजी आप ध्यान रखें कि हमारे बिना आपकी सुगंध फैलेगी नहीं। 'प्रभुजी तुम दीपक हम बाती', अर्थात प्रभुजी तुम मूल्यवान घृत से भरे दीपक हो और हम मूल्यहीन बाती किंतु हमारे बिना आपका दीपक जलेगा नहीं। संत रविदास प्रभु भक्ति में ऐसे डूबे कि प्रभु के साथ अंग–संग हो गए। प्रभु के ऊपर अपना अधिकार जमा लिये। भक्ति में विभोर होकर, रैदास जी कहते हैं कि प्रभुजी हम तो आपका नाम लेकर तर जाएँगे किंतु आपका क्या होगा? यह अध्यात्म की पराकाष्ठा थी। करोड़ों हिंदुओं ने संत रैदास का हाथ पकड़ लिया। रैदासी पंथ चल पड़ा–भक्ति का सहारा लेकर।

**सिख संप्रदाय और सिख गुरु परंपरा** : इस्लाम के आक्रमणों से कराह रही भारत की धरती पर श्रीगुरुनानक देवजी ने अध्यात्म की एक नई धारा शुरू कर दी। निर्गुण ईश्वर की निर्मल–भक्ति, शुचितापूर्ण जीवन, परिश्रम से अर्थोपार्जन तथा सभी कुरीतियों, ढोंग, पाखंड, आडंबरों के विरुद्ध श्रीगुरुनानक देवजी ने एक अलख जगा दी। संगत में मिलकर प्रभु का सिमरन और पंगत में साथ–साथ प्रभु का प्रसाद प्रारंभ हो गया बिखरा हुआ समाज एकजुट होने लगा। श्रीगुरुनानक देवजी ने आध्यात्मिकता और सामूहिकता को जन्म दिया। भारत की सिख गुरु परंपरा ने अध्यात्म के साथ सभी भेदभावों को उखाड़ फेंकने का संकल्प लिया। श्री गुरुनानक देवजी की उदासियों (यात्राओं) ने देश का आध्यात्मिक जागरण किया।

सिख गुरुओं ने भक्ति के साथ स्वधर्म रक्षणार्थ शक्ति का भी आह्वान किया। दशम गुरु श्री गोबिंद सिंह जी महाराज ने खालसा पंथ की सरजना करके तो नया इतिहास ही रच दिया। अध्यात्म, भक्ति, समाज सुधार तथा देश–धर्म–रक्षणार्थ उन्होंने खालसों की सेना सजा दी। खालसे ईश्वर भक्त थे, वे धर्म के सिपाही थे। शक्ति और भक्ति का समन्वित रूप सिक्खी का उदय हुआ। खालसा सृजना के समय श्री गुरु गोबिंद सिंह जी ने कहा–

*यही दास माँगे कृपा सिंधु कीजैं,*
*स्वयं ब्रह्म की भक्ति सर्वत्र दीजै।*
*अगम सूर वीरा उठहिं सिंह योद्धा*
*पकर तुरक गण कछ करै वे निरोधा।।*

गोबिंद सिंह जी भक्ति के साथ ऐसी शक्ति की पुकार कर रहे थे जो अध्यात्म के साथ शत्रुओं का नाश कर सके। इस प्रकार निर्मल, निर्गुण, ईश्वर भक्ति के साथ देश रक्षणार्थ लड़ने वाली फौज का नाम खालसा था। इसका मूल स्वर अध्यात्म ही था।

**महाराष्ट्र का ज्ञानेश्वरी पंथ** : महाराष्ट्र के विलक्षण संत ज्ञानेश्वर ने बहुत ही अल्पायु (16 वर्ष) में ही गीता पर मराठी में भाष्य (ज्ञानेश्वरी) लिखकर दे दिया। लाखों लोगों ने ज्ञानेश्वरी को कंठस्थ कर दिया। विट्ठल–विट्ठल गाते हुए पंढरपुर की वारी (यात्रा) होने लगी। गीता का ज्ञान अब सामान्यजन को मराठी में उपलब्ध हो गया। लाखों लोग ज्ञानेश्वरी का अध्ययन करने लगे। महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर के अनुयायी बने विद्वान् संतों की संख्या बहुत हो गई। देखते ही देखते महाराष्ट्र में संतों, भक्तों की लंबी श्रृंखला खड़ी हो गयी।

महाराष्ट्र के इन संतों में सभी जाति वर्गों का समन्वय था जैसे गोरा कुम्हार थे, सवता माली थे, नामदेव शिंपी थे, तुकाराम कुंबी थे। इसके पूर्व इन जातियों को वहां सम्मान नहीं था। अध्यात्म प्रेरित इस भक्ति आंदोलन ने इन सभी को भरपूर प्रतिष्ठा दी।

**समर्थगुरु रामदास और रामदासी पंथ** : महाराष्ट्र में ही समर्थगुरु रामदास ने भगवान् राम और हनुमान को आराध्य माना और दोनों की भक्ति के साथ राममंदिर, हनुमान मंदिर और अखाडों की स्थापना शुरू कर दी। उनके अनुयायियों ने महाराष्ट्र में हजारों अखाड़े स्थापित किये। इन अखाडों ने शिवाजी महाराज की सेना के लिए हजारों तरुण उपलब्ध कराए। समर्थगुरु रामदासजी ने अध्यात्म का सहारा लेकर शत्रुओं को मारते–मारते संघर्ष करने और अपना राज्य प्राप्त करने की शिक्षा दी। वे कहते हैं–''मारिता मारिता घ्यावे राज्य आपुलें।।''

**चैतन्य महाप्रभु और गौड़ीय संप्रदाय** : 15वीं शताब्दी के उस महाकठिन काल में बंगाल के नवद्वीप का एक विद्वान तरुण ईश्वर भक्ति में लीन हो गया। हरिबोल–हरिबोल कहते–कहते उसको भाव समाधि लग जाती थी। घर–बार छोड़ वह गली–गली, गाँव–गाँव घूमता हरिभक्ति की ही भिक्षा माँगता था। हताश–निराश हिंदू समाज को उसने संकीर्तन के सहारे खड़ा कर एकजुट कर दिया। चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन में गरीब–अमीर, शिक्षित–निरक्षर, ब्राह्मण–शूद्र, राजा–रंक एक थे। वे सभी प्रकार के भेदभाव भूल हरिबोल–हरिबोल के स्वरों के साथ थिरकने लगते थे। हरिबोल

की स्वरलहरी तथा झाँझ, मृदंगों के स्वरों ने ऐसा निर्मल प्रवाह उत्पन्न किया कि जो आया वह आनंद में डूब गया। जो डूबा सो पार हो गया। चैतन्य महाप्रभु ने लुप्त हो गए वृंदावन को खोज निकाला। मणिपुर की जनजातियाँ लगभग 400 वर्ष पूर्व चैतन्य महाप्रभु के शिष्यों से दीक्षित होकर निर्मल कृष्ण भक्ति में डूब गईं। मणिपुर के दूरस्थ स्थानों को अध्यात्म की निर्मल–भक्ति–धाराओं ने राष्ट्र के साथ एकात्मबोध के नये स्वर दिये। गाँव–गाँव, गली–गली वे हरिभक्ति का ही प्रसाद बाँटते रहे। निराश समाज में स्वाभिमान जगा। कीर्तन के नाम से लोग एकत्रित होने लगे। आज मास्को, लंदन, वॉशिंगटन, न्यूयॉर्क, टोक्यो जैसे शहरों की सड़कों पर हजारों शिक्षित युवक हरिबोल–हरिबोल कहते–कहते अश्रुधारा बहाने लगते हैं तो यह प्रभाव चैतन्य महाप्रभु के आध्यात्मिक आंदोलन का ही है। वर्तमान युग में चैतन्य की आध्यात्मिक भक्तिधारा भोगवादी जीवन को भक्ति रस में सराबोर करने की क्षमता रखती दिखती है।

**ओड़िशा का दास पंथ** : ओड़िशा के वैष्णव भक्तों ने हिंदू धार्मिक साहित्य जैसे भागवत, महाभारत, गीता, रामायण आदि ग्रंथों का ओड़िया भाषा में अनुवाद किया और ओड़िया के अंदर वैष्णव भक्ति को गाँव–गाँव में प्रवाहित कर दिया। इन संतों में भक्त रसालदास, भक्त बल रामदास, भक्त अच्युतानंददास, भक्त जगन्नाथदास, भक्त यशोवंतदास तथा भक्त अनंतदास प्रमुख थे। जाति सूचक नामों का प्रयोग समाप्त कर दिया। प्रभु के सामने सभी दास थे।

भारतीय अध्यात्म की यह विशेषता रही कि उसकी दृष्टि सर्वजन सम्मान की रही। इसी कारण भारतीय आध्यात्मिक परंपरा ने विविधताओं और भिन्नताओं को सम्मान की दृष्टि से देखा, उनकी प्रशंसा की तथा सभी में से जो अपने लिए उचित लगा वह वहां से ले लिया। भारत की आध्यात्मिक दृष्टि ने अप्रिय, अरुचिकर, अव्यावहारिक विभिन्नताओं के प्रति भी आत्मीयता और प्रेम का भाव रखकर या तो उनको आत्मसात कर दिया अथवा उनमें सहमति के आधार पर परिवर्तन की राह पकड़ी। पश्चिमी जगत के रिलिजन्स जब दूसरों के प्रति अधिकतम उदार होते हैं तब वे उनके प्रति केवल सहिष्णुता ही दिखाते हैं। वे कभी भी अन्य मत सम्प्रदायों के प्रति सम्मान नहीं दिखाते। क्योंकि वे उनको अपने से हेय, निकृष्ट और पतित मानते हैं।

भारतीय अध्यात्मिक परंपरा बार–बार यह स्मरण कराती है कि कोई भी व्यक्ति अपनी रुचि, प्रकृति, स्वभाव, परिस्थिति तथा मनोभावों के अनुकूल अपनी आस्थाओं के आधार पर अपना ईश्वर आराधना का मार्ग निश्चित कर सकता है। गीता में भगवान् कृष्ण यही कहते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक युग में अध्यात्म की युगानुकूल व्याख्या करने तथा उसको लोक–स्वीकृत करने के लिए आध्यात्मिक महापुरुष खड़े होते रहे। उन महापुरुषों ने अध्यात्म के मूलतत्वों को सदैव सँभालकर रखा। अध्यात्म का मूलदर्शन अपरिवर्तनीय था। किंतु उस मूल दर्शन के प्रकाश में समय–समय पर व्याख्याएँ बदलती रहीं। हर युग में समाज की परिस्थितियाँ भिन्न थीं। उन भिन्न परिस्थितियों में युगानुकूल आवश्यकता के अनुसार आध्यात्मिक विभूतियाँ खड़ी होती थीं। उन विपरीत परिस्थितियों में समाज का योग्य प्रबोधन, मार्गदर्शन तथा व्यवस्थाओं का पुनर्निर्माण होता था।

उदाहरणस्वरूप भगवान् बुद्ध, भगवान् महावीर का एक काल है, उस समय की कुछ विशेष परिस्थितियों में वे उपस्थित होते हैं। उनकी वहाँ भूमिका महत्त्वपूर्ण है। श्रीशंकराचार्य का काल भिन्न है। श्रीशंकराचार्य अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। श्रीरामानुजाचार्य तथा स्वामी रामानंदाचार्य के नेतृत्व में भारत का भक्ति आंदोलन खड़ा होता है, वह एक भिन्न काल है। और जब इस्लाम ने एक नया संकट उत्पन्न किया तब वह संकट अभूतपूर्व था। उसकी प्रतिक्रिया में समाज और उसके दर्शन को बचाए रखने के लिए उत्पन्न हुआ भक्ति–आंदोलन भी अभूतपूर्व था और यह भक्ति–आंदोलन समाज को बचाकर सँभालकर ले आता है।

अंग्रेजों के काल में संकट अलग प्रकार था और इस काल में महर्षि दयानंद का आर्य समाज, राजा राममोहन राय का ब्रह्म समाज, देवेंद्रनाथ ठाकुर का प्रार्थना समाज, रामकृष्ण परमहंस के आध्यात्मिक जागरण को सारा देश जानता है।

भारत के अब तक के ज्ञात इहितास का एक निष्कर्ष हम कह सकते हैं कि भारत के आध्यात्मिक दर्शन के मौलिक सिद्धांत और वह दर्शन सनातन हैं। समय–समय पर कालक्रम के अनुसार समाज में विकृतियाँ आती हैं तब कुछ आध्यात्मिक महापुरूष खड़े हो जाते हैं। मूल आध्यात्मिक दर्शन के प्रकाश में ही वे अपना विचार प्रस्तुत करते हैं। किसी भी कारण से मूल–तत्व और व्यवहार से दूर जा रहे समाज को पुनः अपने दर्शन के निकट ले आते हैं, समाज में आवश्यक सुधार वे करवाते हैं तथा अपने शिष्यों को उसी दृष्टि से उपदेश देते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वे भारत के मूल दर्शन के खूँटे से समाज को लाकर पुनः बाँध देते हैं।

भारत की आध्यात्मिक महान् विभूतियों की यह परंपरा अपने आप में विशिष्ट और दुर्लभ हैं जो किसी भी परिस्थिति में स्वयं जागृत होकर खड़ी हो जाती हैं और स्वयं उस समस्या या विकृति के विरुद्ध मोर्चा लेती है। उनके शिष्य गण उस महान विभूति के अनुयायी बनकर एक मत, पंथ या संप्रदाय चला लेते हैं। किंतु उनका मूल उद्देश्य भारत की आध्यात्मिक परंपरा को सुदृढ़ और सुरक्षित बनाए रखना ही होता है। यह महान परंपरा ही भारत के चिरंजीवी होने का महान्–अक्षुण्ण–अमृतकुंभ है।

यह आध्यात्मिक भाव ही है जो संपूर्ण देश को एक बनाए रखता है। यही इस देश का प्राणतत्व है। यह आध्यात्मिक भाव ही है जो समाज की समस्त गतिविधियों को भी कहीं–न–कहीं संचालित करता है। हमारे स्वभाव–व्यवहार, हमारी दैनंदिन वृत्तियों पर

**भारतीय आध्यात्मिक परंपरा बार-बार यह स्मरण कराती है कि कोई भी व्यक्ति अपनी रुचि, प्रकृति, स्वभाव, परिस्थिति तथा मनोभावों के अनुकूल अपनी आस्थाओं के आधार पर अपना ईश्वर आराधना का मार्ग निश्चित कर सकता है। गीता में भगवान् कृष्ण यही कहते हैं**

भी इस आध्यात्मिक भाव का बड़ा प्रभाव रहता है।

कभी–कभी कुछ लोगों को भ्रम उत्पन्न होता है कि यह जो भिन्न–भिन्न प्रकार के कर्मकांड होते रहते हैं–अध्यात्म से इनका क्या संबंध है? यह स्पष्ट होना चाहिए कि देशभर में विविध प्रकार के कर्मकांड, कार्यक्रम तथा परंपराएँ चलती रहती हैं। जैसे–तीर्थ, तीर्थ–स्नान, मंदिर–मूर्ति, पूजा–पाठ, व्रत–उपवास, कथा–कीर्तन, प्रवचन–भजन, परिक्रमा, आरती, ग्रंथ–पाठ आदि सभी कर्मकांडों के प्रकार ही हैं।

इनकी संख्या और स्वरूप अनंत है। किंतु, इन सभी से एक भाव अपेक्षित है, कि इन सभी कर्मकांडों द्वारा हमारे अंतर्मन में आध्यात्मिक भाव जगता है क्या? यदि उपर्युक्त कार्यों से हमारे अंतकरण में आध्यात्मिक भाव अर्थात् करुणा, प्रेम, दया, सहकार, निवृत्ति, क्षमा, परोपकार, श्रद्धा, निष्ठा, उदारता आदि जगते हैं तो हम आध्यात्मिक हो रहे हैं। भारत के सभी संप्रदाय इसी आध्यात्मिक भाव के विकसन के लिए तथा समाज परिष्कार के लिए ही खड़े होते हैं। यही उनकी अपेक्षित भूमिका है।

**यह आध्यात्मिक भाव ही है जो संपूर्ण देश को एक बनाए रखता है। यही इस देश का प्राणतत्व है। यह आध्यात्मिक भाव ही है जो समाज की समस्त गतिविधियों को भी कहीं-न-कहीं संचालित करता है। हमारे स्वभाव-व्यवहार, हमारी दैनंदिन वृत्तियों पर भी इस आध्यात्मिक भाव का बड़ा प्रभाव रहता है**

कोई भी समाज–व्यवस्था अपने उद्‌गम स्थल पर कितनी ही अच्छी क्यों न हो, आगे चलकर विकृत होती है, टूटती है, और बिखरती है, तब समाज का विचारवान वर्ग खड़ा होता है और उसके संरक्षण और परिष्कार के लिये सतत संघर्ष करता है। यद्यपि समाज की प्रकृति तो स्वभावतः परंपरा और जड़ता प्रिय ही होती है और यह जड़ता समाज को बदलने से रोकती है; तब सद्‌विचार और कुरीति का आपस में संघर्ष होता है। अच्छी बात यह रही कि हिंदू समाज ने सदैव स्वतंत्र और स्वस्थ विचार की अनुमति सभी को दी। इस कारण यहाँ सद्‌विचार से सद्‌परंपराएँ लगातार निर्माण होती रहती हैं। वे पुरानी परंपराओं का स्थान ग्रहण करती हैं और समाज के अंदर एक रचनात्मक नवजागरण का सृजन निरंतर होता रहता है। हिंदू समाज अपने मौलिक सिद्धांतों के सनातन सत्य को लेकर पुनः अपने नये रूप में खड़ा हो जाता है। जितनी परिस्थितियाँ विपरीत और कठिन होती हैं उतना ही यह परिवर्तित होता हुआ अपने मौलिक स्वरूप के और अधिक निकट आ जाता है। हर नई स्थिति में यह सत्य को अपने नवीन रूप के साथ खोज लाता है। सत्य के प्रति इसकी यह खोज कभी समाप्त नहीं होती, इसकी यात्रा में पूर्ण विराम कभी नहीं आता। यही सातत्य इस आध्यात्मिक संस्कृति का पीयूष घट है। ■

*krishnagopal513@gmail.com*
संपर्क–9435040790

# दूसरे मजहब में रहते हुए भी हिंदू-दृष्टि

दूसरे प्रकार का संबंध उनके साथ है जो दूसरे मजहब में या किसी मजहब में न रहते हुए अपने जीवन–साधन में हिंदू–साधना का समावेश करते हैं, चाहे नाप–जप के द्वारा, चाहे संगीत साधना के द्वारा, चाहे ध्यान के द्वारा, चाहे काव्य रचना के द्वारा। दूसरे प्रकार के ऐसे लोग भी हैं जो केवल जीवन के प्रति और परिवेश के प्रति हिंदू–दृष्टि रखते हैं, किंतु अपने मजहब में ही बने रहते हैं। हिंदुस्तान में रहीम, रसखान जैसे कवि, अलाउद्‌दीन जैसे कलाकार और बाउल जोगी जैसे समुदाय इसी कोटि में आते हैं। हिंदू समाज इनको अपने धर्म का प्राण मानता है और उन्हें भगवत्परायण मानता है। हिंदेशिया में अधिसंख्यक जनता मुसलमान है, पर वह रामलीला में शरीक होती है, गणेश और सरस्वती को ज्ञान और विद्या के प्रतीक के रूप में स्वीकार करती हैं। अपनी भाषा में भारत युद्ध का पाठ सुनती है और बाली के हिंदू साधकों से जप–योग की शिक्षा भी लेती है। वह जनता हिंदू की दृष्टि में इस सीमा तक हिंदु अनुभव की साझेदार है, हां, वह अपने मजहब में बनी हुई है, उससे कोई विरोध नहीं है। ■

**–विद्यानिवास मिश्र**
*'हिंदू धर्म, जीवन में सनातन की खोज', पृ. 134 (साभार)*

# हिंदू होने का दायित्व

हम हिंदू होने का अर्थ गैरहिंदू का विरोधी होना मानते हैं या गैरहिंदू से बचाव के लिए तैयारी करने वाला आत्म–रक्षण परायण, भयभीत, पर–आक्रामक हिंदू समझते हैं या फिर सारी दुनिया के हम गुरु हैं, यह अभिमान रखने वाले हिंदू समझते हैं और एक ऊपरी या अवास्तविक भव्यता में मंडित हिंदू मानते हैं। हम जानते ही नहीं कि हिंदू होने का अर्थ कितना बड़ा दायित्व अपने ऊपर लेना है, इतना बड़ा दायित्व जिससे हम अपने अपने नहीं रह जाते हैं, सबके अपने बन जाते हैं। ■

**–विद्यानिवास मिश्र**
*हिंदू धर्म, जीवन में सनातन की खोज', पृ. 137 (साभार)*

# मध्यकालिक सांस्कृतिक निरंतरता

अपने विचारक्रम को ऐतिहासिक दृष्टि से आगे बढ़ाने पर यह लक्षित किया जा सकता है कि जब तुर्क आए, पठान आए, मुगल आए और केंद्रीय राज्यक्षमता छिन गई, तब भी हमारी संस्कृति ने ही सारे देश को एक मानने की दृष्टि को अक्षुण्ण रखा। मध्यकाल में हुए हेमाद्रिपंडित ने अपने संकल्प में देश के मान्य पर्वतों, वनों, नदियों, पुरियों, प्रदेशों का उल्लेख कर पूरे भारतवर्ष का बोध जाग्रत रखा। आज भी श्रावणी आदि पर्वों का पालन करते समय इस विस्तृत संकल्प का पाठ किया जाता है। इस बात पर भी ध्यान जाना चाहिए कि राजनीतिक पराजय के बावजूद हमारी संस्कृति ने किस प्रकार अन्याय का प्रतिरोध करने की प्रेरणा दी, समागत इस्लामी संस्कृति से कैसे सेतु बनाएं, किस प्रकार उसे एक सीमा तक प्रभावित किया, कैसे उसने ग्रहणीय अंश को स्वीकारा।

यह सांस्कृतिक सेतु मुख्यतः योगियों, भक्तों, संतों, सूफियों ने तैयार किया। मध्यकाल में दक्षिण भारत में भक्ति साधना का नवोन्मेष हुआ जिसे उत्तर भारत में प्रवाहित करने का महत्वपूर्ण कार्य आकाशधर्मी गुरु रामानंद ने किया। भक्ति सिद्धांत के अनुसार उन्होंने घोषणा की ''जाति पांति पूछे नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई'', और इस पर अमल भी किया। उनके शिष्यों में कबीर दास भी थे जो मुस्लिम जुलाहा कुल में पैदा हुए थे। कबीर ने हिंदू मुसलमान दोनों को फटकारते हुए पूछा–''दुई जगदीस कहां ते आए, कहु कौन भरमाया'' और दृढ़तापूर्वक घोषणा की,

*हमारे राम रहीम, करीमा कैसो,*
*अलह राम सति सोई।*
*बिसमिल मेटि बिंसभर एकै,*
*और न दूजा कोई।।*

यह विचार एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति की भावना के अनुरूप ही है किंतु उस संघर्ष काल में इसे घोषित करना सचमुच साहस का काम था। कबीर ने योगियों, सूफियों से भी सत्संग किया था किंतु उनका ऐतिहासिक कार्य निर्गुण भक्ति का व्यापक प्रचार करना ही था। उनके शिष्यों में हिंदू–मुसलमान दोनों ही थे। दादू, रज्जब, बरवना, वाजिद, गरीबदास आदि मुस्लिम भक्तों ने भारतीय भक्ति साधना और सूफी साधना को एक हद तक समन्वित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

गुरुनानक देव ने भी निर्गुण भक्ति पर बल दिया, हिंदू–मुसलमान का भेद अस्वीकार कर दोनों को अपना शिष्य बनाया। उनमें भक्ति के साथ–साथ शक्ति की भी ज्योति चमकती थी। बाबर के आत्याचारों से क्षुब्ध होकर उन्होंने जिस तरह उसे फटकारा और घोषणा की, ''हिंदुस्तान संभालसि बोला' वह सचमुच अत्यंत प्रेरणादायक तेजस्विता का प्रमाण है। सचमुच मर्द के चेले उठे और इसी परंपरा का निर्वाह करते हुए गुरु अर्जुन देव ने गुरु ग्रंथ साहब की पवित्रता की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग किए, गुरु तेग बहादुर ने तिलक और जनेऊ के गौरव को बचाने के लिए, वस्तुतः उपासना पद्धति की भिन्नता के अधिकार की रक्षा के लिए अपनी कुर्बानी दी और गुरु गोविंद सिंह ने उसी आदर्श को रूपायित करने के लिए जुझारू खालसा पंथ की स्थापना की। सांस्कृतिक चेतना, राष्ट्रीयता को किस प्रकार सुदृढ़ करती है, इसका उज्जवल निदर्शन है सिखों का बलिदानी इतिहास। दक्षिण–पश्चिम भारतवर्ष में समर्थ स्वामी रामदास की प्रेरणा से ही छत्रपति शिवाजी का प्रादुर्भाव हुआ था।

इसी के साथ–साथ सद्भावपूर्वक सेतु बनाने का कार्य भी चलता रहा। रसखान उच्चवर्ग के पठान थे। पठानों और मुगलों के संघर्ष से दिल्ली नगर को श्मशान सदृश बनता देख कर उनमें वैराग्य जागा। उन्होंने ''छिनहिं'' बादशाह

*डॉ. विष्णुकांत शास्त्री*

वंश की ठसक छोड़कर भक्तों से सत्संग शुरू किया। श्रीकृष्ण के रूप पर, उनकी मनोहर लीलाओं पर वे रीझ गए। उन्होंने लिखा है, ''प्रेम देव की छबिहिं लखि भये मियां रसखान''। कैसी अपूर्व रसमयी कविताएं हैं उनकी। श्रीकृष्ण भक्त की मनोकामना मूर्त हो उठी है। उनके शब्दों में:

*या लकुटी अरु कामरिया पर,*
*राज तिहुं पुरको तजिडारौं।*
*आठहुं सिद्धि नवों निधि को सुख,*
*नन्द की गाइ चराइ बिसारौं।*
*इन आंखिन सों रसखान कबौं,*
*ब्रज के बन बाग, तड़ाग निहारौं।*
*कोटिक हूं कलधौत के धाम,*
*करील की कुंजन ऊपर वारौं।।*

बादशाह वंश का प्रतिनिधि कह रहा है कि मेरी ओर से सोने के करोड़ो भवन वृंदावन के करील के कुंजों के ऊपर न्यौछावर।

बादशाह वंश के एक और प्रतिनिधि थे खानखाना अब्दुर्रहीम–अकबर के फुफेरे भाई। अपनी दोहावली के मंगलाचरण के रूप में उन्होंने भगवती गंगा की ऐसी स्तुति की है कि उसे पढ़कर सहृदय व्यक्ति रोमांचित हो उठता है। वे कहते हैं, हे सुरसरि, हे गंगा मैया तुम सर्वसमर्थ हो। चाहो तो किसी को विष्णु बना दो,

चाहो तो शंकर बना दो। तुम विष्णु के चरणों से प्रवाहित हुई हो और शिवजी ने मालती की माला की तरह तुम्हें अपने शीश पर धारण कर रखा है। तुम मुझे विष्णु नहीं, शिव बनाना, जिससे तुम्हें मैं अपने मस्तक पर धारण कर संकू। अत्यंत मर्मस्पर्शी है यह दोहा।

*अच्युत चरण तरंगिणी*
*शिव सिर मालति माल*
*हरि न बनायो सुरसरी*
*कीजौ इन्दवभाल।।*

इन्हीं रहीम ने पीड़ित जनता की हताशा को दूर कर दृढ़तापूर्वक रामत्व के साथ जुड़े रहने की प्रेरणा देने वाले तुलसीदास के महान ग्रंथ श्री रामचरित मानस के बारे में लिखा थाः

*रामचरितमानस विमल,*
*संतन जीवन–प्रान।*
*हिंदुआन को बेदसम।*
*जवनहिं प्रगट कुरान।।*

संतो के जीवन प्राण सदृश निर्मल रामचरित मानस हिंदुओं के लिए वेद तुल्य है और मुसलमानों के लिए वह कुरान के समान है, यह बात कोई हिंदू नहीं कह रहा, बादशाह वंश के विद्वान प्रतिनिधि अब्दुर्रहीम खानखाना कह रहे हैं। तभी तो भावविभोर होकर भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कहा था, ''इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिक हिंदू वारिये।''

भारतीय मुस्लिम समाज में भारतीय संस्कृति का संचार करने की दृष्टि से हिंदी के सूफी कवियों मौलाना दाऊद, कुतुबन, मंझन, मलिकमुहम्मद जायसी आदि का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। इन कवियों ने इस्लाम की धार्मिक शब्दावली को सहज ही हिंदी में रूपांतरित कर दिया। अल्लाह और खुदा के साथ करतार, अलखनिरंजन सर्वव्यापी का भी प्रयोग उन्होंने परमेश्वर के लिए किया। इसी तरह नूरूल मुहम्मदिया को ज्योति प्रकाश, बिहिश्त को कैलास, कुरान शरीफ को पुराण, रसूल को बसीठ कहने में उन्हें संकोच नहीं हुआ। अपनी धार्मिक आस्थाओं पर दृढ़ रहते हुए फारसी की मसनबी परंपरा के अनुसार ईश्वर वंदना के बाद हजरत मुहम्मद साहब, प्रथम चारों खलीफों, शाहे वक्त और अपने गुरु की स्तुति करके ही वे कथा शुरू करते हैं। उनकी प्रेमकथाओं में भारतीय जीवन और संस्कृति के सजीव रूप के दर्शन होते हैं। बड़े चाव से बड़े अपनेपन के साथ उन्होंने भारतीय त्योहारों, ऋतुओं और जीवन–पद्धति का चित्रण किया है। जायसी ने भारतीय दृष्टि को स्वीकारते हुए बेझिझक कहा है, ''विधना के मारग हैं तेते, सरग नखत तन रोवां जेते'' अर्थात विधाता तक पहुंचने के उतने मार्ग हैं, जितने आकाश में तारे हैं और शरीर में रोएं। वे अपने देश की संस्कृति से किस प्रकार एकमेक हो गए थे, इसका एक प्रमाण यही है कि रामचरित मानस की रचना के चौंतीस वर्ष पूर्व उन्होंने अपने पद्मावत में रामकथा के विविध प्रसंगों का करीब एक सौ बार उल्लेख किया है। फिर भी वे सच्चे सूफी भक्त थे और निस्संकोच घोषणा करते थे कि भगवान तक पहुंचने वाले पंथों में मुहम्मद के द्वारा निरूपित पंथ सबसे बड़ा और अच्छा है।

ऐसा नहीं है कि हिंदी में लिखने के कारण सूफी भक्तों ने भारतीय संस्कृति को इस प्रकार अपनाया था। उर्दू के सबसे बड़े कवि मीरतकी मीर में भी यह तत्व प्रचूर मात्रा में मिलता है। उनका एक मर्मस्पर्शी शेर है जिसमें उन्होंने कहा है कि परमात्मा के सौंदर्य के प्रकाश से ही सब दीपक चमकते हैं, चाहे वह मस्जिद की शमा हो या सोमनाथ का दियाः

*उसके फरोगे हुस्न से*
*झमके हैं सब चिराग*
*शम्मा हरम हो*
*या कि दिया सोमनाथ का।*

वे केवल इतना ही कह कर नहीं रुक गए कि मंदिर के प्रदीप भी प्रभु के सौंदर्य से प्रकाशमान हैं, उन्होंने यह भी कह दिया कि मंदिर की महफिल में भी प्रभु को पाया जा सकता है, इसलिए कभी मंदिर में, कभी मस्जिद में हो आने में उन्हें प्रसन्नता का अनुभव होता था। अद्भुत सद्भाव झलका है उनके इस शेर में–

*कभी मंदिर में हो आओ,*
*कभी मस्जिद में हो आओ।।*
*मकसद तो उसे पाना है,*
*जिस महफिल में हो आओ।*

और वे नजीर अकबराबादी जिन्होंने केवल तन से नहीं, मन से भी भीग कर भारत की वर्षा की बहारों की तारीफ के पुल बांध दिए थे, श्रीकृष्ण की लीला पर कितने मुग्ध थे, उसका कुछ अनुमान उनकी उस प्रसिद्ध नज्म से किया जा सकता है जिसमें उन्होंने झूम कर कहा हैः

*यारो सुनो य' दधि के,*
*लुटैया का बालपन।*
*क्या–क्या कहूं मैं,*
*कृष्ण कन्हैया का बालपन।।*

यह दिवालोक की भांति स्पष्ट है कि धार्मिक कट्टरता को लांघ कर साधना और साहित्य के क्षेत्र में पठान–मुगल काल में ही भारतीय संस्कृति की उदारता को मुसलमान भाई अपना रहे थे। दाराशिकोह द्वारा उपनिषदों का फारसी अनुवाद करवाना भी इसी धारा की एक कड़ी है। इस देश का दुर्भाग्य ही है कि औरंगजेब की मजहबी कट्टरता ने इस धारा को अवरुद्ध करना चाहा पर फिर भी मंद गति से ही सही वह धारा प्रवाहित होती रही। संत प्राणनाथ जी ने समन्वय की दृष्टि से औरंगजेब को पत्र भी लिखा और अपने संप्रदाय में श्रीकृष्ण के निराकार रूप की उपासना का प्रवर्तन किया। असम के श्री शंकर देव ने भी निराकार प्रभु की भक्ति पर ही बल दिया है। इसी तरह रीतिकालीन हिंदी साहित्य पर फारसी साहित्य का प्रभाव देखा जा सकता है। संगीत, नृत्य, चित्रकला में भी आदान–प्रदान चलता रहा। यह उदार समन्वयी धारा निश्चय ही भारत के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की गौरवपूर्ण उपलब्धि है। ■

**–डॉ. विष्णुकांत शास्त्री**

*'भू सांस्कृतिक अधिष्ठान*
*राष्ट्रीयता का नियामक'*
*दीनदयाल स्मृति व्याख्यान, 2000,*
*पृ. 24 (साभार)*

डा. सच्चिदानंद जोशी

# भारत तथा राष्ट्र भाव

*भद्रं इच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः तपो दीक्षां उपसेदुः अग्रे।*
*ततो राष्ट्रं बलं ओजश्च जातम्। तदस्मै देवा उपसं नमन्तु।।*

''आत्मज्ञानी ऋषियों ने जगत् का कल्याण करने की इच्छा से सृष्टि के प्रारंभ में जो दीक्षा लेकर तप किया, उससे राष्ट्र निर्माण हुआ, राष्ट्रीय बल और ओज भी प्रकट हुआ। इसलिए सब प्रबुद्धजन इस राष्ट्र के सामने नम्र होकर इसकी सेवा करें।''

अथर्ववेद 19/41/1

इस लेख का शीर्षक किसी को भी अटपटा लग सकता है या लोग इस शीर्षक को पढ़कर आश्चर्य में पड़ सकते हैं। जब यह लेख अंग्रेजी में था तो लेख का शीर्षक इंडिया एंड नेशनलिज्म या इंडिया एंड नेशनलिस्ट हो सकता था। परंतु इस लेख में इस तथ्य पर जानबूझकर जोर देने का प्रयास किया गया है कि भारत को इंडिया के रूप में एवं राष्ट्र को नेशन के रूप में अनूदित नहीं किया जा सकता। यह आधुनिक भारतीय विचारकों का दुर्भाग्य रहा है कि वे उन कुछ महत्वपूर्ण भारतीय शब्दों पर जोर नहीं दे सके, जिनका अंग्रेजी में किसी भी प्रकार से अनुवाद नहीं हो सकता है। यद्यपि, बीते दिनों हमने देखा कि लोग अब यह स्वीकार करने लगे हैं कि 'धर्म' का अनुवाद रिलिजन नहीं है। इसी प्रकार हमें यह भी समझना होगा कि 'राष्ट्र' का अर्थ 'नेशन' नहीं है।

इस तथ्य पर जानबूझकर जोर देने का प्रयास किया गया है कि भारत को इंडिया के रूप में एवं राष्ट्र को नेशन के रूप में अनूदित नहीं किया जा सकता। यह आधुनिक भारतीय विचारकों का दुर्भाग्य रहा है कि वे उन कुछ महत्वपूर्ण भारतीय शब्दों पर जोर नहीं दे सके, जिनका अंग्रेजी में किसी भी प्रकार से अनुवाद नहीं हो सकता है।

राष्ट्र शब्द को संस्कृत के मूल शब्द राज से अंगीकार किया गया है तथा जिसमें प्रत्यय 'शत्रण' जोड़कर इसे राष्ट्र बनाया है। राष्ट्र का अर्थ राज्य, देश; साम्राज्य, जनपद या प्रदेश हो सकता है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि नेशन शब्द फ्रांसीसी शब्द nacion से लिया गया है, जिसका अर्थ है जन्म (naissance) या "उद्गम का स्थान", जिसकी जड़ें पुनः लैटिन शब्द 'natio' में प्राप्त होती है, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'जन्म'। 'नेशन' शब्द को राज्य (सरकार) या संप्रभु राज्य या देश (एक भौगोलिक भूभाग) के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। तो जब यूरोपीय इतिहासकार हमें बताते हैं कि भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा का उभार अंग्रेजी शासन में 1857 के उपरांत हुआ है, तो उनकी अज्ञानता पर तरस ही खाया जा सकता है तथा विरासत एवं परम्परा के विषय में उनके ज्ञान के अभाव पर आश्चर्य ही व्यक्त किया जा सकता है। दुर्भाग्य से, आज भी यदि कोई भारत में राष्ट्रवाद को इंटरनेट पर खोजता है तो उसमें वही पुरानी अंग्रेजों द्वारा स्थापित स्थापनाएं एवं अवधारणाएं ही परिणामस्वरुप परिलक्षित होती हैं।

"राष्ट्र भाव" पर और चर्चा करने से पहले हम इस पर विचार करते हैं कि भारत क्या सच में एक राष्ट्र है या फिर यह मात्र एक ही देश में रहने वाले कुछ लोगों का समूह है। एक राष्ट्र के रूप में हमारी मूलभूत एकता को प्रायः कई प्रख्यात विद्वानों द्वारा नकारा जाता रहा है, जबकि इसकी ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक एकता को देश के अंग्रेजी शासकों द्वारा कभी मान्यता ही नहीं दी गयी। सर जॉन स्ट्रेचे की टिप्पणी है कि "भारत के विषय में सबसे पहली और सबसे आवश्यक जानने योग्य बात यह है कि हमारे सामने जिस भारत की बार बार बात की जाती है वह भारत वास्तविकता में कहीं नहीं है और यह कभी नहीं था, या यहाँ तक कि यूरोपीय विचारों के अनुसार भारत के किसी भी देश में किसी भी प्रकार की राजनीतिक, भौतिक, सामाजिक या धार्मिक एकता नहीं दिखती है। हम जिस भारत के विषय में इतना सुनते हैं, ऐसा कभी कोई भारत राष्ट्र के रूप में नहीं था, और न ही कोई भारतवासी।"

हमारा मानना है कि सर जॉन स्ट्रेचे का यह विश्वास कि भारत "भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक' अर्थों में कभी भी राष्ट्र नहीं रहा है, सर्वथा गलत है। जबकि इसके विपरीत बहुत ही सरलता से यह प्रमाणित किया जा सकता है कि भारत सदैव ही भूभागीय,

हिन्दुस्तान पेट्रोलियम
HP
HP
HP
HP Aviation

खुशियाँ बिखेरते हुए...
भविष्य उन लोगों का है जो अपने सपनों में यकीन रखते हैं और तब पूरा ब्रह्मांड उन सपनों को साकार करने के लिए एकजुट हो जाता है। हमें गर्व है कि एचपीसीएल में हम करोड़ों सपनों को सच में बदलने की कोशिशों का एक अभिन्न अंग हैं। हम, हर दिन, हर तरह से उनके जीवन को स्पर्श करते हैं।
हम रसोई को ऊर्जा प्रदान करते हैं जो मकान को घर का रूप देती है। हम उन पहियों में रफ़्तार भरते हैं जो अविस्मरणीय यात्रा वृतान्त लिखते हैं। हम, उन पंखों को उर्जावान बनाते हैं जिनसे सपनों की उड़ान भरी जाती है। हम, अर्थव्यवस्था को शक्ति देते हैं जो समृद्धि के पहियों को गतिमान बनाती है। हम, आपके और आपके प्रियजनों के लिए एक सुरक्षित, स्वस्थ और संधारणीय भविष्य सुनिश्चित करते हैं। हम, नवाचार से नेतृत्व और उत्तरदायित्व से दिशा ग्रहण करते हैं। हम एक 'उर्जामय कल' और 'खुशहाल जीवन' का वादा करते हैं।
एचपीसीएल में हम देते हैं खुशियों की सौगात...
रिफाइनिंग • पेट्रोलियम विपणन • पीओएल पाइपलाइन्स • नैसर्गिक गैस • अन्वेषण एवं उत्पादन • वैकल्पिक ऊर्जा
MoPNG e SEVA : तेल एवं गैस संबंधित शीघ्र कार्रवाई हेतु किसी पूछताछ के लिए कृपया /MoPNGeSeva | /MoPNG_eSeva पर संपर्क करें
स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर
पहल
#GiveItUp
Feel the Joy of Giving
UJJWALA
LPG पंचायत
SANKALP SE SIDDHI
NEW INDIA MOVEMENT (2017-2022)
Skill India
/hpcl74 | /hpcl | /hpcl74
www.hindustanpetroleum.com

जलवायु परिवर्तन पर इसकी राष्ट्रीय कार्य योजना के अनुरूप, भारत सरकार ने नवीकरणीय ऊर्जा विकास को प्राथमिक रूप से प्रोत्साहित किया है। पीएफसी नवीकरणीय ऊर्जा परियोजनाओं के विकास हेतु अगले पाँच वर्षों के लिए विशेष ब्याज दर पर ₹15,000 करोड़ की वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के लिए वचनबद्ध है। क्योंकि हर हाल में एक स्वच्छ और हरित भविष्य की रचना ही पीएफसी का ध्येय है।

**पावर फाइनेंस कॉर्पोरेशन लिमिटेड**
(एक नवरत्न पीएसयू)
पंजीकृत कार्यालय: "ऊर्जानिधि", 1, बाराखम्बा लेन, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली–110001
फोन: 011-2345 6000; फैक्स: 2341 2545; वेबसाइट: **www.pfcindia.com**

सशक्त जीवन, सशक्त भारत

/pfcindia पर हमें फॉलो करें

**जब हम अपने इतिहास पर प्राचीन वैदिक काल से आधुनिक काल तक दृष्टि डालते हैं, तो हम पाते हैं कि बंगाल से गुजरात तक, कश्मीर से श्रीलंका तक पूरे भारतीय प्रायद्वीप को एक मातृभूमि के रूप में ही परिभाषित किया जाता रहा है**

ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक रूप से मूलतः एक रहा है। उत्तर एवं पूर्व में हिम से आच्छादित हिमालय तथा दक्षिण और पश्चिम में हिन्द महासागर से घिरा हुआ भारत भौगोलिक रूप से एक देश रहा है। इसके अंदर हर हिस्से में बहुत ही सरलता से आवागमन सुलभ है। देश के अन्दर कोई भी प्राकृतिक सीमा इसके विभिन्न हिस्सों को विभाजित नहीं करती है; ऊंचे से ऊंचा पर्वत देश में एक हिस्से से दूसरे हिस्से में जाने के स्वतंत्र मार्ग को अवरोधित नहीं करता है। वास्तविकता तो यह है कि यूरोप या अमेरिका में किसी भी अन्य देश की तुलना में बहुत अधिक स्पष्ट रूप से भारत एक भौतिक इकाई है।

जब हम अपने इतिहास पर प्राचीन वैदिक काल से आधुनिक काल तक दृष्टि डालते हैं, तो हम पाते हैं कि बंगाल से गुजरात तक, कश्मीर से श्रीलंका तक पूरे भारतीय प्रायद्वीप* को एक मातृभूमि के रूप में ही परिभाषित किया जाता रहा है। "आरंभिक वैदिक साहित्य में मातृभूमि को संबोधित करते हुए कई मन्त्र उपस्थित हैं। रामायण और महाभारत दोनों ही महाकाव्यों में आर्यों के मूल स्थान के रूप में भारत की बात की गयी है।" हमें देश में और कोई भी दूसरी पहचान नहीं दिखती है। हमारा सम्पूर्ण साहित्य राष्ट्र भाव के विषय में विचारों से भरा हुआ है और कहीं भी पृथक बंगाल, मद्रास, गुजरात या पंजाब राष्ट्रों का उल्लेख भौगोलिक विभाजन के आधार पर नहीं मिलता है। भारतीय प्रायद्वीप में शक्तिशाली शासकों ने प्राचीन से लेकर आधुनिक काल तक शांति तथा सुरक्षा के लिए ही शासन किया है। हम देखते हैं कि भारत की एकता में विश्वास इतना गहरा है कि भारतीय प्रायद्वीप में प्राचीन काल से ही हर शासक जब तक इस पूरे भूभाग पर नियंत्रण नहीं प्राप्त कर लेता था, तब तक वह अपनी विजय को अधूरी ही समझता था।

वैदिक काल से ही राष्ट्र को कई बार एक भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अस्तित्व के रूप में जाना जाता रहा है। हमारी समृद्ध बौद्धिक विरासत, जिसमें पूरे देश में कई विश्वविद्यालय पल्लवित हुए, वह भी यही दिखाती है कि विद्वान देश के विभिन्न भागों में यात्रा करते रहे हैं और शिक्षा देते रहे हैं। हमारी प्रातः प्रार्थना का द्वितीय श्लोक इस प्रकार हैः

*समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।*
*विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।*

जिसका अर्थ है "हे मातृभूमि, जिसके पास अपने वस्त्रों के रूप में महासागर हैं एवं हृदय के रूप में पर्वत हैं, जो विष्णु भगवान की सहचरी हैं (माँ लक्ष्मी)! मैं आपके सम्मुख शीश झुकाता हूँ, कृपया मुझे क्षमा करें, कि मैं अपने चरण आप पर रख रहा हूँ।" यह वह भावना है जो हर भारतीय द्वारा हर सुबह अपना पैर भूमि पर रखने से पहले व्यक्त की जाती है। इस प्रार्थना में भारतवासी द्वारा मातृभूमि के प्रति अनन्य श्रद्धा की भावना व्यक्त की गयी है कि मनुष्य ने यहाँ पर जन्म लिया एवं जिसके लिए वह सर्वोच्च देवी है।

राष्ट्र शब्द हमारी संस्कृति एवं परम्परा में कहीं गहरे धंसा हुआ है। अर्थववेद के पृथ्वी–सूक्त(12.1.12) में यह कहा गया है कि

*'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या'*

जिसका अर्थ है कि यह धरती हमारी माँ है और हम धरती माँ की संतान हैं। इसे 'राष्ट्र' का जन्म तथा राष्ट्र के प्रति कृतज्ञता की भावना कहा जा सकता है।

इसी प्रकार अथर्ववेद (13.35) के एक और मन्त्र में यह प्रार्थना की गयी हैः

*ये देवा राष्ट्भृतोभितो यन्ति सूर्यम्।*
*तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रम् दधातु सुमनस्यमानः।।*

जिसका अर्थ है "रोहित आप पर प्रसन्न हों एवं आपके राष्ट्र की स्थापना उन देवों के साथ करें, जो सूर्य का चक्कर लगाते हुए राष्ट्र का पोषण करते हैं।"

जिस भूमि पर मनुष्य ने जन्म लिया है उसके प्रति मातृत्व की भावना तथा उसके संरक्षण, स्थिरता तथा सम्पन्नता की भावना राष्ट्र की भावना के मूलभूत तत्व को स्थापित करती है। हमारे वैदिक साहित्य में कई ऐसे उदाहरण हैं, जहां मातृभूमि का विवरण या मातृभूमि के प्रति प्रार्थना प्राप्त होती है। वैदिक साहित्य भारतीय परम्पराओं के आधार का निर्माण करता है। यदि यह मातृभूमि के प्रति कोई आख्यान प्रस्तुत करता है तो यह स्पष्ट रूप से भारत के ही विषय में हैं, न कि किसी और देश के विषय में। एक और उदाहरण में (अथर्ववेद 12.1.17) लिखा हुआ हैः

*विश्वस्वम् मातर्मोषिधिनां ध्रुवां*
*भूमिं पृथिविं धर्मणा धृताम्।*
*शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा।।*

जिसका अर्थ है, धरती माँ स्थिर एवं विस्तृत हों; जिस पर सर्वश्रेष्ठ जड़ीबूटी एवं औषधि के पौधे पल्लवित हों, फलित हों। आइये हम सब धरती माँ की सेवा करें। धरती माँ हम पर भौतिक आनंद की वर्षा करे, जो ज्ञान, वीरता, सत्यता, प्रेम एवं अन्य अच्छी विशेषताओं से परिपूर्ण हों,

यह मन्त्र यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि मात्रभूमि के प्रति ऐसी भावनाएं राष्ट्र के लिए उच्चतम सम्मान तथा उसके कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए ही व्यक्त की जानी चाहिए।

अर्थववेद में एक और प्रार्थना है (10.173.5), जिसके अनुसार

*ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः।*
*ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्र धरियतां ध्रुवम्।।*

'हे वरुण देव, हमे स्थिरता दें, हे बृहस्पति देव हमें स्थिरता दें, हे इंद्र देव, हे अग्नि देव, हमें स्थिरता दें। हमारा देश स्थिर हो।'

सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय साहित्य में भारत को एक ऐसी भूमि के विषय में बताया गया है जिसकी अपनी एक संस्कृति है और वह एक एकात्मक संस्था है।

* उप–महाद्वीप नही

*उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेष्चैव दक्षिणम्।*
*वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र संततिः।।*
(ब्रह्म पुराण 19.1)

इसका अर्थ है–समुद्र की उत्तर दिशा में हिमालय पर्वत से लेकर दक्षिण तक जो समस्त भू–भाग स्थित है, उसका नाम भारत वर्ष है। उसकी संतति अर्थात इस भू–भाग में जन्म लेने वाली 'सन्तान' भारतीय कहलाती है।

इसी प्रकार विष्णु पुराण में, (अध्याय 2, 3.24) यह कहा गया है कि:

*गायन्ति देवाः किल गीतकानि,*
*धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।*
*स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति*
*भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।*

जिसका अर्थ है कि देवगण निरंतर यही गुणगान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और मोक्ष के मार्ग पर चलने के लिए भारत–भूमि में जन्म लिया है, वे मनुष्य हम देवताओं की अपेक्षाओं से अधिक धन्य और भाग्यशाली हैं।

यह मात्र कुछ उदाहरण हैं जो यह इंगित करते हैं कि राष्ट्र को किस प्रकार हमारे परम्परागत स्रोतों में देखा गया है तथा किस प्रकार राष्ट्र की अवधारणा को हमारी दैनिक प्रार्थनाओं में सम्मिलित कर हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बनाया गया है।

श्री अरबिंदो राष्ट्र की इस अवधारणा को बहुत ही स्पष्ट रूप से सविस्तार बतलाते हैं। उनके अनुसार भारत न तो मात्र एक भौगोलिक इकाई, न ही मात्र भौतिक या लौकिक भूमि का टुकड़ा, न ही मात्र बौद्धिक अवधारणा है वरन यह एक दैवीय अवतार है, एक शक्तिशाली माँ जिसने शताब्दियों तक अपने शिशुओं का पालन पोषण किया है। वह आगे और जोर देकर कहते है "राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? यह केवल भूमि का एक टुकड़ा, न ही कोई अलंकार, और न ही मस्तिष्क की कोई कल्पना है। यह शक्तिशाली शक्ति है, करोड़ों इकाइयों की सभी शक्तियों से मिलकर बनी है, जो राष्ट्र का निर्माण करती हैं, जैसे भवानी महिषासुर मर्दिनी में लाखों देवताओं की शक्ति एक रूप हो गईं थीं और शक्ति का परम रूप सम्मुख आया था, जो एकता में परिवर्तित हुआ था।" वह भारत को एक जीवित एवं स्पंदित आध्यात्मिक इकाई के रूप में देखते हैं।

श्री अरबिंदो के लिए, राष्ट्रवाद की अवधारणा देशभक्ति से कहीं अधिक गहरी एवं सुस्पष्ट तथा प्रगाढ़ थी। उन्होंने राष्ट्रवाद को आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य, एक दृश्य धार्मिक प्रक्रिया के रूप में देखा जो मातृभूमि की बंधनमुक्ति के साथ–साथ इसके भक्तों के आध्यात्मिक विकास के लिए भी आवश्यक है। उनका राष्ट्रवाद विशुद्ध रूप से एक अंतर्राष्ट्रवाद में विकसित हो जाता है जिसका सर्वोच्च लक्ष्य मानव एकता का आदर्श है।

स्वामी विवेकानंद भारत के विषय में बहुत स्पष्ट रूप से दावा करते हैं "हमारी पवित्र मातृभूमि धर्म और दर्शन की भूमि है–त्याग की भूमि है, एकमात्र स्थान जहां प्राचीन काल से आधुनिक काल तक मनुष्य के लिए जीवन के उच्चतम आदर्श रहे हैं।" शिकागो में अपने सुप्रसिद्ध संबोधन में स्वामी विवेकानन्द ने अपने देश को यह कहकर प्रस्तुत किया था कि "मुझे गर्व है कि मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी हूँ, जिसने पूरे जगत को सहिष्णुता एवं सार्वभौमिक स्वीकार्यता जैसे शब्दों से परिचित कराया। हम मात्र सार्वभौमिक सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते हैं, अपितु सभी धर्मों को सत्य के रूप में ही स्वीकार करते हैं। मैं एक ऐसे देश का वासी होने पर गर्व का अनुभव करता हूँ, जिसने इस धरती पर समस्त राष्ट्रों तथा समस्त धर्मों के शरणार्थियों तथा पीड़ितों को शरण दी है।"

राष्ट्र की भावना वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है तथा इसे बाल गंगाधर तिलक, वीर सावरकर, सुभाष चन्द्र बोस तथा महात्मा गांधी के विचारों एवं कार्यों में थोड़े बहुत अंतरों के साथ देखा जा सकता है। तथापि इन सभी के विचारों का सार एक ही है। हमारे लिए राष्ट्र का अर्थ एक जीवित इकाई है, जो ऊर्जावान है, गतिशील एवं प्रगतिशील है। हम हमेशा ही राष्ट्र को अपने भविष्य के कार्यों हेतु एक निर्देशित बल एवं प्रेरक शक्ति के रूप में देखते हैं। राष्ट्र की धुरी के चारों ओर विचार प्रक्रिया का संचालन इस मूल सिद्धांत के साथ होता है, कि हमने राष्ट्र के लिए क्या किया है? तो हमें अपने राष्ट्र के गौरव एवं सम्मान को बनाए रखने के लिए सदैव ही कर्तव्यशील होना चाहिए।

हमने कई शताब्दियों से विदेशी आक्रमणों का सामना किया है तथा विदेशी शासकों के अधीन रहे हैं। विभिन्न संस्कृतियों ने हम पर अधिकार स्थापित करने के साथ ही हम पर सांस्कृतिक एवं अन्य प्रकार के वर्चस्व भी स्थापित करने का प्रयास किया है। कई ऐसे चरण थे जब हम दबावों के आगे झुक गए। परंतु यह एक राष्ट्र के रूप में भारत ही है जिसने हर अवसर पर हमें शक्ति दी तथा हमें उस दबाव से बाहर निकाल कर लाया। यह हमारी जड़ों में गहरा धंसा हुआ राष्ट्रभाव है जिसने हमें मुक्ति का मार्ग दिखाया। शान्ति, सहिष्णुता एवं स्वीकार्यता ही हमेशा राष्ट्र के रूप में हमारी जीवन पद्धति रही है और यह हमारे आचरण में भी परिलक्षित होती रहती है।

पंडित दीनदयाल जीवन के प्रति भारतीय दृष्टिकोण की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि "हमारे लिए मानव की प्रगति से अर्थ है शरीर, बुद्धि, मस्तिष्क तथा मानव की आत्मा की सम्पूर्ण समकालिक प्रगति। प्रायः यह मिथ्या प्रचार किया जाता है कि भारतीय संस्कृति मात्र आत्मा के ही मोक्ष के विषय में बात करती है तथा यह शेष के विषय में ध्यान नहीं देती है। यह एकदम गलत है। हम आत्मा के विषय में विचार करते हैं, परन्तु यह सत्य नहीं है कि हम शरीर, मस्तिष्क तथा बुद्धि को उतनी महत्ता नहीं देते हैं। वह इस पर भी बल देते हुए कहते हैं कि भारतीय संस्कृति प्रकृति में समग्रतावादी है। यदि हम इन विचारों पर संज्ञान लेते हैं तो हम समझ सकते हैं कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र भाव की मूल अवधारणा क्या है

**राष्ट्र की भावना वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है तथा इसे बाल गंगाधर तिलक, वीर सावरकर, सुभाष चन्द्र बोस तथा महात्मा गांधी के विचारों एवं कार्यों में थोड़े बहुत अंतर के साथ देखा जा सकता है**

तथा राष्ट्रवाद या देशभक्ति किस प्रकार राष्ट्र की समग्र अवधारणा से सर्वथा भिन्न है। उनके अवलोकन के अनुसार हमारा विश्वास जोड़ने पर रहा है, और कभी भी संघर्ष या विघटन में नहीं। यह उनके सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का सार है। श्री एम.एस. गोलवलकर (गुरुजी) के अनुसार किसी भी भारतीय में राष्ट्रवादी भावनाओं का संचार करने के लिए तीन प्रकार के मूल तत्व हैं। प्रथम देश के प्रति भक्ति भावना, जो हमारी पवित्र जन्मभूमि है। द्वितीय; बंधुत्व एवं साथ की भावना, जो इस सोच का परिणाम है कि हम इस महान भूमि की ही संतान हैं। तृतीय; राष्ट्रीय जागरूकता की उत्कट भावना जो एक समान उत्तरदायित्व, एक सी परम्परा, एक से इतिहास, एक सी अपेक्षाओं तथा एक समान आदर्श के माध्यम से उत्पन्न हो सकती है। ये तीन तत्व हिन्दू राष्ट्रवाद के सार का निर्माण करते हैं, जो भारत माता के मंदिर की नींव है। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के कारणों पर बात करते हुए श्री वी.डी. सावरकर बहुत ही जोर देकर कहते हैं कि "यह कभी भी गाय की चर्बी वाले कारतूस जैसी छोटी घटनाओं की परिणिति स्वरूप नहीं हो सकता था, अपितु उस समय स्वराज एवं स्वधर्म के लिए एक बहुत ही प्रबल भाव प्रवाहित हो रहा था। यह इसलिए हुआ क्योंकि एक राष्ट्र के रूप में भारत अंग्रेजी शासन के अधीन खुलकर सांस नहीं ले पा रहा था, एक राष्ट्र के रूप में उसका दम घुट रहा था।"

श्री अरबिंदो की मातृभूमि को समर्पित यह कविता राष्ट्र के प्रति भारतीय की भावना को प्रदर्शित करती है::

*ओ माँ, लो झुकाता हूँ शीष सम्मुख तुम्हारे!*
*नदी, जल प्रपातों की अठखेलियाँ,*
*हरे भरे चमकदार खेत खलिहान,*
*मंद मंद ठंडे समीर के झोंके,*
*और माँ का लहराता हरा धानी आँचल,*
*यह सब तुम ही तो हो माँ, मेरी देवी माँ!*
*तुम, जिसने बचाया, किया उत्थान, और सहेजा!*
*माँ, बार बार आक्रमणों से होता मैला आँचल,*
*देख रोता हूँ मैं! आते हैं अश्रु!*
*और कराने को तुम्हें मुक्त,*
*करता हूँ वादा!*
*तुम मात्र विधान नहीं, ज्ञान हो,*
*हमारा हृदय, हमारी आत्मा, हमारी श्वांस*
*तुम हमारे हृदय में प्रज्ज्वलित हो वह अग्नि,*
*जिसने जीत लिया है मृत्यु को।*
*तुम हमारे शस्त्र की शक्ति हो,*
*माँ, तुम्हारा सौन्दर्य, तुम्हारा आकर्षण,*
*सब कुछ दिव्य है,*
*हमारे देवालय में और कोई नहीं,*
*माँ, विराजती हो तुम ही!* ■

*msignca@yahoo.com*
*संपर्क–9205500164*

**संदर्भ संकेत**

1 *पं.श्रीपाद दामोदर सतवालेकर–अथर्ववेद का सुभ भाष्य (हिंदी)*
2 *एंथनी डी स्मिथ –'नेशलिज्म (राष्ट्रवाद');*
3 *अखिलेश आर्येंदु–'वेद में मातृभूमि की वंदना (हिंदी)';*
4 *ए.आर.देसाई–'रीसेंट ट्रेंड्स इन इन्डियन नेशलिज्म (भारतीय राष्ट्रवाद में हालिया रुझान');*
5 *अरबिंदो–'द, रेनेसां इन इंडिया एंड अदर एसेज़ ऑन इंडियन कल्चर (भारत में पुनर्जागरण और भारतीय संस्कृति पर अन्य निबंध');*
6 *दीनदयाल उपाध्याय– 'इंटीग्रेटेड ह्यूमैनिज्म (एकात्म मानवता');*
7 *श्री एम एस गोलवलकर – 'विचार नवनीत (हिंदी)';*
8 *हंस कोहन–'द आईडिया ऑफ नेशलिज्म: अ स्टडी इन इट्स ओरिजिन एंड बैकग्राउंड; (राष्ट्रवाद का विचार: इसकी उत्पत्ति और पृष्ठभूमि में एक अध्ययन');*
9 *जॉन आर मक्लेन – 'इंडियन नेशलिज्म एंड अलीं कांग्रेस (भारतीय राष्ट्रवाद और प्रारंभिक कांग्रेस');*
10 *करण सिंह–प्रोफेट ऑफ इंडियन नेशलिज्म '(भारतीय राष्ट्रवाद के पैगंबर');*
11 *पीटर वान देव वीर – 'रेलिजियस नेशलिज्म (धार्मिक राष्ट्रवाद');*
12 *रवींद्रनाथ टैगोर – 'नेशलिज्म (राष्ट्रवाद');*
13 *श्री वी.डी. सावरकर – '1857 का स्वतंत्रता संग्राम' (हिंदी)*

# परंपरागत सभ्यताबोध का बहिष्कार

स्वतंत्रता के बाद हमारे सत्तारूढ़ वर्ग ने जो नीतियां बनाईं वे भारतीय सभ्यता की इसी सांस्कृतिक परंपरा के प्रति घोर अवज्ञा और अज्ञान का परिणाम थीं। दुनिया में शायद ही किसी देश में बौद्धिक दिवालिएपन और आत्मविस्मृति की मिसाल कहीं देखने को मिले जो हमें भारत में दिखाई देती है। अपने तथाकथित 'धर्मनिरपेक्षी' (जिसे धर्म अज्ञान कहना अधिक उचित होगा) उत्साह में इस सत्तारूढ़ वर्ग ने पश्चिम की भोंडी नकल करते हुए भारत के सार्वजनिक जीवन से इस परंपरागत सभ्यता–बोध को प्रतिक्रियावादी और पिछड़ा हुआ मानकर बहिष्कृत कर दिया। शायद 19वीं शताब्दी के वे क्रिश्चन मिशनरी भी ये देखकर हैरान रह जाते कि जिस धर्मबोध को वे भारतीय मनीषा से निष्कासित करने में असफल रहे थे उसे स्वतंत्रता के बाद हमारे राजनेताओं ने किस हिकारत और वितृष्णा से तिरस्कृत कर दिया। ■

**–निर्मल वर्मा**
*hindisamay.com*
*'धर्म और धर्म निरपेक्षता' निबंध से( साभार)*

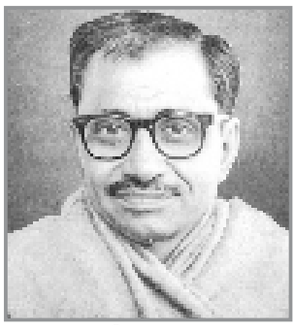

दीनदयाल उपाध्याय

# भारतीय संस्कृति में अर्थ

यह भ्रममूलक धारणा है कि भारतीय संस्कृति और धर्म अध्यात्म प्रधान होने के कारण भौतिक जीवन की समस्याओं के प्रति उदासीन हैं। यह भ्रम दूषित प्रचार एवं आध्यात्मिकता का गलत अर्थ करने का परिणाम है। वास्तविकता तो यह है कि हमारे धर्म की व्याख्या भौतिकता का पूर्ण विचार करके चलती है। ''यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धि स धर्मः'' अर्थात् जिससे ऐहिक और पारलौकिक उन्नति प्राप्त हो, वह धर्म है

आर्थिक प्रश्नों के समाधान हेतु पश्चिम की ओर देखने का एक प्रमुख कारण यह भ्रममूलक धारणा है कि भारतीय संस्कृति और धर्म अध्यात्म प्रधान होने के कारण भौतिक जीवन की समस्याओं के प्रति उदासीन हैं। यह भ्रम दूषित प्रचार एवं आध्यात्मिकता का गलत अर्थ करने का परिणाम है। वास्तविकता तो यह है कि हमारे धर्म की व्याख्या भौतिकता का पूर्ण विचार करके चलती है। ''*यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धि स धर्मः*'' अर्थात् जिससे ऐहिक और पारलौकिक उन्नति प्राप्त हो, वह धर्म है। जिसने इस लोक को छोड़ दिया, वह परलोक को नहीं बना सकेगा। भौतिकता और आध्यात्मिकता परस्पर विरोधी अथवा विलग भाव नहीं है। आध्यात्मिकता जीवन का एक दृष्टिकोण है, जिससे हम सभी प्रश्नों की ओर देखते हैं। अध्यात्मवाद यदि विश्व की सही व्याख्या कर सकता है तो कोई कारण नहीं कि उसके द्वारा हम विश्व की समस्याओं का समाधानकारक हल न प्राप्त कर सकें।

## धर्मस्य मूलमर्थः

भारत ने भौतिक जगत् का ही नहीं, अर्थ का भी विचार किया है। महर्षि चाणक्य ने कहा, '*सुखस्य मूलं धर्मः। धर्मस्य मूलमर्थः*।' सुख धर्ममूलक है तो धर्म अर्थमूलक। अर्थ के बिना धर्म नहीं टिकता। यहाँ हम धर्म की व्यापक परिभाषा लेते हैं, वह संकुचित एवं आधुनिक भ्रमपूर्ण अर्थ नहीं, जो धर्म का मत, मजहब या रिलीजन समझ लेता है। जिससे समाज की धारणा हो, जो ऐहिक और पारलौकिक उन्नति में सहायक हो, जिसके कारण मानव के कर्मों का निर्धारण होकर वह कर्तव्य की संज्ञा प्राप्त कर ले, जिससे व्यक्ति अपनी सब प्रकार की उन्नति करता हुआ समष्टि के अभ्युत्थान में सहायक हो सके, वह नियम व्यवस्था और उसके मूल में निहित भाव धर्म है। यह धर्म अर्थ के अभाव में नहीं टिक सकता। कहा जाता है कि विश्वामित्र ने क्षुधा से अत्यंत पीड़ित होने पर रात्रि के समय चोरी करके चंडाल के घर से कुत्ते का जूठा मांस खाया। उन्होंने धर्म की अनेक मर्यादाओं को भंग किया। आपद् धर्म की संज्ञा देकर शास्त्रकारों ने उनके इस व्यवहार को उचित ठहराया। यदि अर्थ के अभाव की यह आपत्ति बराबर रहे तो फिर आपद् धर्म अर्थात् चोरी ही धर्म बन जाए और यदि यह आपत्ति समष्टिगत हो जाए अथवा समष्टि का बहुतांश इससे व्याप्त हो तो वे एक–दूसरे की चोरी करके अपने आपद् धर्म का निर्वाह करेंगे। किंतु जहाँ अभाव होगा, वहाँ चोरी भी किसकी होगी? अर्थात् उस परिस्थिति में समाज नष्ट हो जाएगा।

## अर्थ का प्रभाव

अर्थ का अभाव ही नहीं, अर्थ का अत्यधिक प्रभाव भी धर्म का नाश करता है। यह भारत का अपना विशेष दृष्टिकोण है। पश्चिम के लोगों ने अर्थ के प्रभाव का विचार नहीं किया। अर्थ जब अपने में या उसके द्वारा प्राप्त पदार्थों में और उनसे प्राप्त भोग–विलास में संग (आसक्ति) उत्पन्न कर देता है, तब अर्थ का प्रभाव कहा जाता है। जिसे केवल पैसे की ही धुन लगी रहे, वह देश, धर्म, जीवन का सुख सबकुछ भूल जाता है। इसी प्रकार विषयासक्त मनुष्य पौरुषविहीन होकर स्वयं और समाज के नाश का कारण बनता है। प्रथम प्रकार के प्रभाव में अर्थ की साधनता नष्ट होकर वह साध्य बन जाता है। द्वितीय में अर्थ धर्माचरण का साधन न होकर विषय–भोगों का साधन बन जाता है। विषय तृष्णा की कोई मर्यादा न होने के कारण एक ओर तो ऐसे व्यक्ति के सम्मुख सदैव अर्थ का अभाव ही बना रहेगा, दूसरे पौरुषहानि से उसकी अर्थोपार्जन की क्षमता भी कम होती जाएगी।

जब 'अर्थ' ही समाज के प्रत्येक व्यवहार और

व्यक्ति की प्रतिष्ठा का मानदंड बन जाए, तब भी अर्थ का प्रभाव हो जाता है। ऐसे समाज में 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति' की उक्ति चरितार्थ होती है। मान, सम्मान, राजनीतिक अधिकार तथा समाज में स्थान जब केवल धनवान व्यक्ति को ही प्राप्त हो, वहाँ लोगों में धनपरायणता आ जाती है। जब समाज में सभी धनपरायण हो जाएँ, तो प्रत्येक कार्य के लिए अधिकाधिक धन की आवश्यकता होगी। धन का प्रभाव प्रत्येक के जीवन में अर्थ का अभाव उत्पन्न कर देता है।

## जीवन के मानदंड

समाज से अर्थ के प्रभाव व अभाव दोनों को मिटाकर उसकी समुचित व्यवस्था करने को 'अर्थायाम' कहा गया है। आवश्यकता है कि समाज के मानदंड ऐसे बनाए जाएँ कि हर वस्तु पैसे से न खरीदी जा सके। निश्चित ही यह कार्य केवल अर्थव्यवस्था के आधार पर नहीं किया जा सकता। देश के लिए लड़ने वाला सैनिक अपने जीवन की बाज़ी अर्थ की कामना से नहीं लगाता। अर्थ का लालच उसे देशद्रोह सिखा सकता है, देशभक्ति नहीं। स्त्री के सतीत्व का अपना मूल्य है, उसे अर्थ की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता। वैद्य रोगी की चिकित्सा के बदले में अर्थ किन मूल्यों के आधार पर ले सकेगा? अध्यापक विद्यादान का मूल्य नहीं लगा सकता। सरकारी कर्मचारी किस आधार पर एक फाइल को आगे सरकाने के लिए मूल्य लेगा? दुर्बल की रक्षा करने वाली पुलिस जब अपनी सेवाओं का मूल्य माँगे, तब या तो दुर्बल की रक्षा ही नहीं हो पाएगी अथवा शरीर शक्ति में दुर्बल अपनी बुद्धि का उपयोग कर धूर्तता से धन कमाकर रक्षा का मूल्य चुकाएगा। श्रम का, शारीरिक और मानसिक, फिर उनका उपयोग चाहे दृश्य वस्तुओं के उत्पादन अथवा सेवाओं में हुआ हो, रुपए पैसे में मूल्य आँकना असंभव है। फिर रुपया वह भी तो स्थिर मूल्य नहीं। श्रम और पारिश्रमिक दोनों का, अर्थशास्त्र के क्षेत्र में घनिष्ठ संबंध होने पर भी, व्यवहार जगत् के लिए सर्वमान्य एवं सर्वकष मूल्य सिद्धांत निश्चित करना न तो सरल है और न उपादेय ही। वास्तविकता तो यह है कि दोनों का मूल्यांकन पृथक् मानदंडों से होता है। श्रम की प्रतिष्ठा उससे मिलने वाले

**व्यक्तियों की निर्बाध और असीम प्रतिस्पर्धा को न तो हम सामाजिक जीवन का नियामक मान सकते हैं और न सुरक्षापूर्ण ही। अर्थशास्त्र की यह मान्यता मत्स्य न्याय का प्रतिपादन करने वाली है। हमने इस न्याय को कभी धर्मसंगत नहीं माना**

अर्थ के कारण नहीं, अपितु उसके धर्मत्व से है। इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति को दिया गया पारिश्रमिक उसके द्वारा किए श्रम का प्रतिदान नहीं, बल्कि उसके योगक्षेम की व्यवस्था है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसीलिए कर्म और फल दोनों को अलग–अलग रखा गया है। कर्म लोकसंग्रहार्थ एवं ईश्वर भक्ति के रूप में करना है। श्री भगवान् ने 9वें अध्याय में कहा है।

*यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।*
*यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।*

हे अर्जुन! तुम जो कुछ करते हो, जो खाते हो, जो हवन करते हो, जो देते हो और जो तप करते हो, वह सब मुझे अर्पण कर दो। हमारे कर्म का लक्ष्य भगवत् आराधना ही हो सकता है। ऐसे भक्तों की चिंता का भार स्वयं भगवान् ने अपने ऊपर लिया है। उसी अध्याय में वे कहते हैं।

*अनन्याश्चिन्तयन्तौ मां ये जनाः पर्युपासते।*
*तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम।।*

जो अनन्य भाव से मेरी उपासना करते हैं, उन नित्य कर्मयोगियों के योगक्षेम का मैं विचार करता हूँ।

गीतोक्त उक्त सिद्धांत के अनुसार कर्म की मूल प्रेरणा अनियंत्रित प्रतियोगिता अथवा लाभ की वृत्ति नहीं हो सकती। पाश्चात्य अर्थशास्त्र की ये मान्यताएँ भारत के जीवनदर्शन से मेल नहीं खातीं। यह कहने से काम नहीं चलेगा कि आज हमारे व्यवहार और दर्शन में भारी अंतर है। वास्तव में तो समाज में आज भी अधिकांश व्यक्ति अपने व्यवसाय और वृत्ति में कर्तव्य भाव से ही लगे हुए हैं। जितना हम इस भाव से दूर हटते जाते हैं, उतना ही हमारी समस्याएँ विषम होती जाती हैं। हमें यदि अपने राष्ट्र का युगनिर्माण करना है तो उसकी प्रेरणा अपने जीवनदर्शन से ही लेनी होगी।

## पाश्चात्य अर्थशास्त्र की सीमाएँ

पाश्चात्य अर्थशास्त्र ने जिन सामान्य मान्यताओं के आधार पर अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह एकांगी तथा अपूर्ण है। उसकी मान्यता है कि

1. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मुख्यतः वैयक्तिक है, जिसका अलग से कोई सामाजिक पहलू नहीं है।
2. व्यक्तियों की निर्बाध और असीम प्रतिस्पर्धा ही सामाजिक जीवन की स्वाभाविक एवं सुरक्षापूर्ण नियामक है।
3. राजकीय एवं सामाजिक प्रथा द्वारा लागू नियमन सभी स्वाभाविक स्वतंत्रता का अतिक्रमण करते हैं।[1]

उपर्युक्त मान्यताएँ सत्य से बहुत दूर हैं। आज राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अस्तित्व एवं आवश्यकता से कोई इनकार नहीं कर सकता। यदि राष्ट्र की अपनी कोई इकाई है और वह केवल व्यक्तियों के समुच्चय से भिन्न जीवमान निकाय है तो उसकी अभिव्यक्ति जीवन के प्रत्येक व्यवहार में अपनी विशिष्टताओं के साथ होनी चाहिए। यदि इन अदृश्य विशेषताओं को हम आँख से ओझल कर भी दें तो भी आज प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के साथ अपने सभी आर्थिक संबंधों का निर्धारण एक पृथक् इकाई के आधार पर कर रहा है। संयुक्त राष्ट्र के अनेक संगठन तथा विभिन्न अंतरराष्ट्रीय अभिसमय इसके उदाहरण हैं।

व्यक्तियों की निर्बाध और असीम प्रतिस्पर्धा को न तो हम सामाजिक जीवन का नियामक मान सकते हैं और न सुरक्षापूर्ण ही। अर्थशास्त्र की यह मान्यता मत्स्य न्याय का प्रतिपादन करने वाली है। हमने इस न्याय को कभी धर्मसंगत नहीं माना। पश्चिम में भी इसकी प्रतिक्रिया हुई है, किंतु उन्होंने प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने के लिए वर्गों की भयंकर प्रतिस्पर्धा पैदा कर एक वर्ग के द्वारा दूसरे के विनाश का मार्ग अपनाया है। प्रतिस्पर्धा का भाव केवल आर्थिक क्षेत्र में नहीं, अन्य क्षेत्रों में भी रह सकता है। अतः वर्ग विनाश से प्रतिस्पर्धा समाप्त नहीं होती।

प्रतिस्पर्धी वर्ग दूसरे आधार पर उत्पन्न होकर मत्स्य न्याय को चलाते रहते हैं। उससे बचने का रास्ता तो धर्म के आधार पर संपूर्ण जीवन का नियमन ही है।

तीसरा सिद्धांत यद्यपि मूलतः सत्य है किंतु समाज में मानव की कुछ स्वतंत्रताओं पर मर्यादाएँ आवश्यक होती हैं। अनियंत्रित स्वतंत्रता केवल कल्पना की वस्तु है। हाँ, यह नियंत्रण जितना बाहरी होगा, उतना ही मानव को कष्टदायक होगा। शिक्षा और संस्कार, दर्शन और आदर्शवादी व्यवहार में मनुष्य को आत्मनियंत्रण सिखाते हैं। इसी प्रकार समाज की प्रथाएँ एक व्यवस्था बनाकर मानव का कार्य सरल एवं सुविधाजनक कर देती हैं। खेत काटने की परंपरानुसार निश्चित मज़दूरी पाश्चात्य अर्थशास्त्र के माँग और पूर्ति के नियमों का चाहे पालन न करती हो, किंतु वह किसान और मज़दूर दोनों के लिए सामाजिक ही नहीं, आर्थिक दृष्टि से भी लाभदायक है।

## सर्वांगीण दृष्टिकोण की आवश्यकता

पाश्चात्य अर्थशास्त्र के जितने भी नियम हैं, वे एक अर्थपरायण व्यक्ति (Economic man) की कल्पना करके चलते हैं। यह अर्थमापी व्यक्ति जीवन में कहीं नहीं मिलता। स्वयं जे.एस. मिल ने माना है–''संभवतः कोई भी व्यावहारिक प्रश्न ऐसा नहीं होता, जिसका निर्णय आर्थिक सीमाओं के अंदर ही दिया जा सके। अनेक आर्थिक प्रश्नों के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक एवं नैतिक पहलू होते हैं, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।'' किसी समय विशेष पर मानव व्यवहार जीवन के अनेक मूल्यों के आकर्षण–विकर्षण से निश्चित होता है। विभिन्न शास्त्रों के विद्वान् उसी एक व्यवहार का विश्लेषण अपने–अपने दृष्टिकोण से करते हैं। वे एक ऐसी स्थिति की कल्पना करके चलते हैं, जिसमें अन्य प्रवृत्तियों का अस्तित्व न हो। किंतु उनके काल्पनिक जगत् और व्यवहार जगत् में सदैव ही बहुत बड़ा अंतर रहता है। उनके सिद्धांत सही भी हों तो भी सीमित उपयोग के रहते हैं।

## चार पुरुषार्थ

भारत ने इसीलिए मनुष्य का विभाजित विचार न करके पूर्णता के साथ विचार किया। मनुष्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का चार मोटे–मोटे भागों में वर्गीकरण करके उन सबकी संतृप्ति ही मानव का पुरुषार्थ बताया। ये चार पुरुषार्थ हैं : धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ये चारों एक–दूसरे के पूरक हैं। जो कर्म इन सबको प्राप्त कराने वाला हो, वही श्रेष्ठ है। इनमें से किसी की भी अवहेलना करके चलने वाला व्यक्ति दुःख और अशांति का भागी बनता है।

इन चारों में से किसी एक को भी श्रेष्ठ या शेष का आधार समझना भी ठीक नहीं होगा। वैसे मोक्ष को परम पुरुषार्थ कहा है, क्योंकि उसको प्राप्त करने के बाद कुछ भी प्राप्तव्य नहीं बच रहता। किंतु बिना धर्म, अर्थ और काम के मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं। महर्षि वेदव्यास ने कहा है, ''धर्मादर्थश्चकामश्च,'' अर्थात् धर्म से ही अर्थ और काम की प्राप्ति होती है। जहाँ कोई व्यवस्था ही नहीं, वहाँ अर्थ और काम की प्राप्ति कैसे हो सकती है? किंतु दूसरी ओर हमने इसका पूर्वविवेचन किया है कि किस प्रकार अर्थ के बिना धर्म नहीं टिक पाता। वास्तव में ये चारों पुरुषार्थ अन्योन्याश्रित हैं। एक से दूसरे की रक्षा और संवर्धन होता है। जिस प्रकार प्राण अन्न से बलवान होते हैं तथा सबल प्राण अन्न को पचा सकते हैं, वैसे ही धर्म से अर्थ और काम की तथा अर्थ और काम से धर्म की धारणा होती है।

## चार विद्याएँ

इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त कराने वाली विद्याओं के संबंध में विवेचन करते हुए भी कौटिल्य ने लिखा है: ''आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्या।'' आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दंडनीति, ये चार विद्याएँ हैं। इसके पूर्वाचार्यों ने इनमें से किसी एक, दो या तीन को ही विद्या माना किंतु कौटिल्य ने चारों को मान्यता दी। उन्होंने लिखाः *''चनस्त्र एवं विद्या कौटिल्य। तामिर्धर्मार्थौयद्विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम्।'*[2] अर्थात् कौटिल्य के मत से चारों ही विद्या हैं, जिनसे धर्म और अर्थ का ज्ञान होता है, वे वास्तव में विद्या हैं और उन्हें उस रूप में मानना चाहिए।

मनुष्य के जीवन का यह सर्वांगपूर्ण विचार ऐसी किसी भी अर्थ–रचना की कल्पना नहीं कर सकता, जिसमें नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्थापना किए बिना ही मनुष्य को सुखी बनाया जा सके। इतना ही नहीं, कोई भी अर्थ–रचना अपनी सफलता और अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक इच्छा, उत्साह और सामर्थ्य का सृजन स्वयं नहीं कर सकती। अपनी ही गति से बराबर गतिमान अर्थव्यवस्था असंभव है। उसे गति देने के लिए और बाद में भी कम–से–कम रुकावट के साथ सुचारु रूप से चलते रहने के लिए व्यक्ति और समाज के जीवन में प्रेरणा का स्रोत अर्थ के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र ढूँढना होगा। राष्ट्र की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएँ, प्रेरणाएँ अर्थ–रचना को बनाने और टिकाने में सहायक होती हैं। अतः हम समाज या व्यक्ति की समस्याओं एवं उसके लक्ष्यों का टुकड़ों में विचार नहीं सकते। यह हो सकता है कि समय विशेष पर हम किसी एक अंग को अधिक महत्त्व दें किंतु हम शेष की भी अवहेलना नहीं कर सकते। ■

*दीनदयाल उपाध्याय, संपूर्ण वाङ्मय, खंड पाँच पृ. 182 (साभार)*

**महर्षि वेदव्यास ने कहा है, ''धर्मादर्थश्चकामश्च,'' अर्थात् धर्म से ही अर्थ और काम की प्राप्ति होती है। जहाँ कोई व्यवस्था ही नहीं, वहाँ अर्थ और काम की प्राप्ति कैसे हो सकती है**

**संदर्भ संकेत**

1 *जी.बी. जठार–के.जी. जठार : भारतीय अर्थशास्त्र , पृष्ठ 2*

2 *इन विद्याओं की व्याख्या करते हुए लिखा है: ''सांख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी। धर्माधर्मौ त्रय्यामर्थानर्थौ वार्तायां नयानयौ–दण्डनीत्याम्।'' अर्थात संपूर्ण दर्शन, योग आदि उपासना शास्त्र तथा लोकायत साहित्य आन्वीक्षकी के अंतर्गत आता है। त्रयी से धर्म और अधर्म का, वार्ता से अर्थ और उसके अभाव का तथा दंडनीति से राजनीति और दुर्नीति का ज्ञान होता है।*

**Mi2C Security & Facilities Private Limited**
**(Building Safe, Secured & Skilled India)**
8/40, South Patel Nagar, New Delhi - 110008
Tel: +91 11 25843241, 25843242, Fax: +91 11 25843244
Email: mi2csf@gmail.com, **Web: www.mi2c.in**
**Mi2C Skill Development Academy**
Academy – V.P.O Ghoga, P.S Narela, Delhi – 110039
Phone : 011-27281721, 27281722

## CURSORY OVERVIEW

- ISO 14001: 2004 Certified Company.
- OHSAS 18001: 2007 Certified Company.
- ISO 9001: 2008 Certified Company.
- ISO 9001: 2015 Certified Company.
- Licensed under PSAR Act in Delhi NCR, U.P, Haryana, Punjab, Chandigarh, Bihar, H.P, M.P, & Rajasthan.
- Affiliated with MEPSC, Accrediated with NIOS, Shobhit University.
- Member of PHD Chamber of Commerce & Industry, CAPSI, APSA.
- Academy recognised by Govt. of NCT of Delhi, under Delhi PSAR Act.
- Registered VTP with DGT.

## SERVICES WE OFFER

- Security
- Housekeeping
- Facility & Utility
- Training & Skill Development
- Consultancy and Security Audits
- Fire and safety Engineering
- Hospitality
- Manpower Supply
- Specially Trained Manpower
- Traffic Marshal
- Bank's Cash Van

## OUR ACHIEVEMENTS

- More than 50 clients from Central/ State/ Delhi Govts, PSUs, Hospitals and private sector giants with more than 5000 persons on roll.
- Provided Training to more than 5200 trainees under PSAR and other Schemes at Central/ State.
- Provided Skill Development Training to around 1600 candidates under PMKVY.
- Underway to Skill 6000 to 7000 Candidates per year under RPL Scheme of PMKVY

गेल
GAIL

गेल
GAIL

# भारतीय परिदृश्य में आर्थिक प्रक्रियाएं

डॉ. पी. कनकसभापति

हमारे देश में सामाजिक विज्ञान के शेष अन्य क्षेत्रों की भांति अर्थशास्त्र पर विचार भी बहुत लम्बे समय से पश्चिमी आयामों के माध्यम से न केवल परिभाषित अपितु प्रस्तुत किए जा रहे हैं। यहाँ तक कि भारतीय अर्थशास्त्रियों पर पश्चिमी विचारधाराओं के प्रभुत्व के कारण स्वतंत्रता के उपरान्त भी किसी भी प्रकार के सुधारात्मक कदम उठाने संभव नहीं हो पाए। जिसके परिणामस्वरूप हम विश्विद्यालय स्तर पर केवल दो ही आर्थिक मॉडल को देखते हैं अर्थात पूंजीवाद तथा साम्यवाद, जो वैश्विक समझे जाते हैं तथा विश्व के सभी देशों पर लागू होते हैं।

अब तक हम जान चुके हैं कि दोनों ही दृष्टिकोण, जो पश्चिम में अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में पैदा हुए और अपनी ही कर्मभूमि जैसे सोवियत संघ तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में पिछले तीन दशकों में विफल हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त कई बहुपार्श्विक इकाइयों जैसे विश्व बैंक, लगभग सभी अर्थशास्त्रियों ने यह स्वीकार किया है कि विभिन्न देशों के लिए विभिन्न मॉडल होने चाहिए। उन्होंने यह अनुभव करना आरम्भ कर दिया है कि कई और कारक ऐसे हो सकते हैं जैसे संस्कृति ऐसा कारक हो सकती है जो आर्थिक गतिविधियों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

परन्तु हमारे शैक्षणिक संस्थान, और हमारा नेतृवर्ग पश्चिमी मॉडल पर निर्भर हैं। उन्होंने भारत की तरफ स्वदेशी दृष्टिकोण से देखना ही बंद कर दिया है। जिस समय पश्चिम जगत का सूरज ढल रहा है, भारत का उदय हो रहा है, तो भी वे सच्चाइयों की ओर दृष्टिपात करने और उन्हें स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हैं।

पिछले पच्चीस वर्षों से देश के विभिन्न भागों में किए गए हमारे अध्ययन एक बहुत ही स्पष्ट चित्र दिखाते हैं। सबसे पहले तो हमें इस तथ्य को स्मरण रखना होगा कि भारत मात्र एक अलग देश है ही नहीं। यह एक प्राचीन सभ्यता है जिसका एक लंबा इतिहास तथा इसकी कुछ विशेष महत्वपूर्ण विशेषताएं रही हैं। भारत को हम पिछले कुछ दशकों में लिखी गयी कुछ मुट्ठीभर पाठ्यपुस्तकों से नहीं समझ सकते हैं। हमें भारत की जमीनी सच्चाई जानने और समझने के उद्देश्य से सार्थक अध्ययन करना होगा।

हमारा अध्ययन यह बताता है कि भारत का आर्थिक व्यवहार अनूठा है। वह प्रसिद्ध पश्चिमी ज्ञान परंपरा में फिट नहीं होती हैं, बल्कि वह एकदम से ही अलग है। वे हमारे राष्ट्र की मिट्टी एवं धूल में रची बसी हैं। हमारी भूमि की परम्पराओं एवं संस्कृति से प्रभावित है। राज्य की नीतियाँ जो इन व्यवहारों के अनुकूल नहीं होती, उनका उल्लंघन कर वे स्वयं सफलता का मार्ग खोज लेते हैं।

भारत स्वतंत्रता के दौरान एक गरीब, अल्प विकसित तथा कम शिक्षित देश रहा है। तब भारत की लगभग 45 प्रतिशत तक आबादी गरीबी रेखा के नीचे निवास कर रही थी। भारत में साक्षरता की दर मात्र 18 प्रतिशत थी तथा औसत जीवन आयु थी मात्र 32 वर्ष। परन्तु आज स्वतंत्रता के सात दशकों के उपरान्त हम विश्व की सबसे तेज बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था हैं। लगभग सभी अनुमान इस तरफ इशारा करते हैं कि भारत भविष्य के लिए सबसे संभावनाशील अर्थव्यवस्था है। पहले लंदन बिजनेस स्कूल ने यह अनुमान लगाया था कि हमारे पास लगभग 85 मिलियन उद्योजक है, शायद संसार में सबसे अधिक।

यह कैसे संभव हुआ? हम जानते हैं कि 1950 से तीन दशकों से अधिक समय तक शासन करने वालों ने नीति निर्माण के लिए समाजवादी दृष्टिकोण का अनुगमन किया है। जिसके परिणामस्वरूप हमारे सामने बड़ी कठिनाइयां

हमारे शैक्षणिक संस्थान, और हमारा नेतृवर्ग पश्चिमी मॉडल पर निर्भर हैं। उन्होंने भारत की तरफ स्वदेशी दृष्टिकोण से देखना ही बंद कर दिया है। जिस समय पश्चिम जगत का सूरज ढल रहा है, भारत का उदय हो रहा है, तो भी वे सच्चाइयों की ओर दृष्टिपात करने और उन्हें स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हैं

आईं, यहाँ तक कि एक समय तो हमारे पास अपने आयातों का भुगतान करने के लिए भी कोई राशि नहीं थी। 1990 की शुरुआत से ही नीति निर्माताओं ने भू–मण्डलीकरण के साथ बाजारवाद को चुना। उसके बाद भी हमारे सामने बहुत ही गंभीर समस्याएं आईं, विशेष रूप से कृषि एवं मझोले उद्यमों जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में।

परन्तु कई वर्षों से लगातार नीति निर्माताओं द्वारा अनुपयुक्त पश्चिमी दृष्टिकोण अपनाने के बावजूद भारत ने प्रगति की है। अध्ययन इस बात को दशार्ते हैं कि भारत कई दशकों से निरंतर शांत लेकिन मंथर गति से आगे ही बढ़ रहा है। विश्व का समकालीन आर्थिक इतिहास यह दिखाता है कि दुनिया में कोई भी ऐसा देश नहीं है जिसने पिछले सात दशकों में ऐसा यू टर्न लिया हो। वह सबसे गरीब देश से एकदम से विश्व की सबसे अधिक संभावनाशील अर्थव्यवस्था बन गया।

अध्ययन यह भी बताते हैं कि स्वभाव से ही भारतीयों में एक समृद्ध आर्थिक बोध होता है। इसलिए उनकी मूलभूत समझ के आधार पर ही रोजमर्रा की आर्थिक प्रक्रियाएं बनी हैं। इसे हम बचत के उदाहरण से समझ सकते हैं। भारत में बचत जीवन का एक भाग है। बचत के लिए उन्हें जान–बूझकर कुछ करने की जरूरत नहीं होती, वह स्वाभाविक रूप से होती है। जरूरत से ज्यादा खर्चा करना आज भी भारत में पाप माना जाता है, और यह बोध विभिन्न स्तरों एवं विविध वर्गों के मध्य समान रूप से व्याप्त है।

पंद्रह साल पहले कोयम्बतूर के मुख्य फूलों के बाज़ार में कुछ महिला फूल विक्रेताओं पर एक अध्ययन किया गया था। उनके पास अपना काम शुरू करने के लिए पैसे भी नहीं थे, तो उन्होंने स्थानीय साहूकारों से पैसे उधार लिए और ऊँची ब्याज दर देकर भी उन्हें मध्याह्न तक चुका दिया। उनकी रोज़ की कमाई 250–300 रूपए के बीच थी, मगर उनमें से हर कोई 100 रूपए या उससे अधिक ही बचा रही थी। इन महिलाओं की सालाना आय लगभग 1,73,000 रूपए हुई। हम उन्हें आम तौर पर बहुत ही साधारण और अनपढ़ औरतें मानते हैं, परन्तु बचत की उनकी समझ बहुत ही गहरी थी।

बचत कई स्तरों पर होती हैं। ध्यान में

**कई वर्षों से लगातार नीति निर्माताओं द्वारा अनुपयुक्त पश्चिमी दृष्टिकोण अपनाने के बावजूद भारत ने प्रगति की है। अध्ययन इस बात को दर्शाते हैं कि भारत कई दशकों से निरंतर शांत लेकिन मंथर गति से आगे ही बढ़ रहा है**

आता है कि सूक्ष्म, लघु तथा मझोले केन्द्रों के उद्योजक अपनी कमाई में से लगभग 90 प्रतिशत या उससे अधिक की बचत कर लेते हैं। यहाँ तक कि कॉरपोरेट स्तर पर भी भारतीय कम्पनियों का बचत और साझी पूंजी का प्रतिशत पश्चिमी देशों के कॉरपोरेट की तुलना में अधिक होता है।

उद्योजनशीलता, एक और मुख्य आर्थिक प्रक्रिया है, जिसके विशेष भारतीय लक्षण हैं। भारतीयों में बहुत ही अधिक उद्योजकीय क्षमताएं होती हैं। भू–मण्डलीय उद्योजकता मॉनिटर (जी.ई.एम.) रिपोर्ट 2002 के अनुसार भारत में दुनिया की दूसरे नंबर की सबसे सक्रिय उद्योजक जनसंख्या है, लगभग 19 फीसदी जनसंख्या उद्योजकता में संलग्न है। वास्तव में यह आंकड़ा चीन और अमेरिका जैसे बड़े देशों की तुलना में सबसे ऊँचा है।

स्वतंत्रता के उपरान्त उद्यमशीलता का इतिहास बहुत ही प्रेरक रहा है। कई बड़े उद्योगों के बीज हमारे देश में 1950 और 1960 के दशकों के बीच में बोए गए जब नेहरू समाजवादी समाज निर्माण की नीतियों को कार्यान्वित कर रहे थे। समय के साथ कुछ वर्षों में वे आर्थिक जगत के महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गए जो अपनी गतिविधियों से देश की अर्थव्यवस्था में अपनी सर्वोच्च सहभागिता के साथ वे कार्य करने लगे। 1950 से या उससे भी पहले औपनिवेशिक काल से ही यदि भारतीय उद्यमियों की गतिविधियों पर हम नज़र डालते हैं तो यह पाते हैं कि भारतीय उद्योजकों ने अपना काम अपने आप ही करना आरम्भ कर दिया था और उन्होंने राज्य की नीतियों के निर्माण की प्रतीक्षा नहीं की।

हर औद्योगिक और व्यापार क्षेत्र का भारतीय स्वभाव के साथ काम करने का बहुत ही रोचक इतिहास रहा है। स्थानीय कारक तथा सामाजिक संबंधों की इनमें बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है। दक्षिण तमिलनाडु में एक प्रभावशाली समुदाय है नाडार, वे पुराने समय से ताड़ी बनाने का धंधा करते आए हैं। वह बहुत ही साधारण पृष्ठभूमि से थे, और उनके पास पैसा नहीं था। जब उन्होंने अपना व्यापार शुरू करना चाहा तो उन्होंने अपनी एक 'स्थानीय समुदाय वित्तीय प्रणाली' बनाई, और उसे नाम दिया 'महामाई', जिसके माध्यम से समुदाय का हर व्यक्ति कुछ न कुछ राशि एक कॉमन पूल में जमा कर सकता था। उसके बाद इकट्ठा हुआ पैसा वह व्यापारिक गतिविधियों के लिए अपने किसी न किसी सदस्य को जरूरत होने पर देते थे।

आज वह दक्षिण तमिलनाडु का सबसे बड़ा व्यापारिक समुदाय हैं। शिवकाशी देश के लगभग तीन चौथाई आतिशबाजी उत्पादों का निर्माण करता है और लगभग आधी माचिस की डिब्बियों का निर्माण करता है। इसके अलावा भारत में उनके सर्वश्रेष्ठ ऑफसेट प्रिंटिंग केंद्र भी हैं, जो उच्च सुरक्षा वाली वस्तुओं जैसे चेक बुक तथा अंतर्राष्ट्रीय ग्राहकों के लिए फ्लाईट के टिकट मुद्रित करता है। तमिलनाडु राज्य में विरुधुनगर इनका एक प्रमुख व्यापारिक केंद्र है। इसके अतिरिक्त इस समुदाय की पूरे राज्य में राशन की दुकानें हैं और हमारे देश के अन्य महत्वपूर्ण शहरों में भी इनकी दूकानें फैली हुई हैं। इसके अतिरिक्त तमिलनाडु मर्केंटाइल बैंक, जो सबसे सफल बैंकों में से एक है, दशकों पूर्व समुदाय के आधार पर ही इसका वित्तपोषण हुआ था।

सामुदायिक नेटवर्क और संबंधों का परिणाम एक उच्चतम सामाजिक पूंजी में होता है। सामाजिक पूंजी आर्थिक और व्यापारिक गतिविधियों में सहायता करती है। विश्व बैंक द्वारा प्रकाशित विश्व विकास रिपोर्ट 2001 के अनुसार देश में तिरुपुर के शीर्ष स्वेटर निर्यात केंद्र बनने के पीछे सामाजिक पूंजी की भूमिका ही है। ये सामुदायिक संबंध परस्पर बहुत गहरे हैं। यह कहती है कि उद्योजन उपक्रमी अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार

में सस्ते उत्पाद–मूल्यों के माध्यम से ही प्रतिस्पर्धा कर पाए क्योंकि पूंजी की लागत उनकी समुदाय के नेटवर्क के माध्यम से सस्ते उधार के कारण बहुत कम थी।

सामुदायिक नेटवर्क भारतीय व्यापारियों को वैश्विक स्तर पर सफल बनाता है। बेल्जियम में अंतर्राष्ट्रीय हीरा बाज़ार पूरी तरह से भारतीयों के ही कब्ज़े में है, जिनमें पटेल और जैन अपने रिश्तों के माध्यम से बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हम सभी जानते हैं कि पटेल ही हैं जो अमेरिका में मोटेल उद्योग पर अधिकार जमाए हैं।

देशज प्रक्रियाएं किसी भी क्षेत्र को संपन्न तथा जीवंत बनाती हैं, और वह राज्य तथा देश की अर्थव्यवस्था में बड़े स्तर पर योगदान करती हैं। तमिलनाडु के पश्चिमी हिस्से, जिसे कोंगु क्षेत्र भी कहा जाता है, ऐसा अनुमान है कि वह राज्य की अर्थव्यवस्था में लगभग 45 प्रतिशत का योगदान करता है। इस क्षेत्र में प्रभुत्व रखने वाला समुदाय गोंदर है, जिसकी पृष्ठभूमि पहले कृषि थी, और अब यह कई औद्योगिक एवं व्यापारिक गतिविधियों में अपना नाम स्थापित कर चुका है, जैसे वस्त्र, परिवहन, इंजीनियरिंग तथा निर्यात। इस क्षेत्र में कई मुख्य केंद्र भी हैं जैसे तिरुपुर, करुर, नमक्कल, संगकिरी, तिरुचेंगोडे और कोयम्बतूर, जिनका राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर महत्वपूर्ण स्थान है।

भारत में आर्थिक प्रक्रियाओं का आधार परिवार ही रहे हैं, पारिवारिक मूल्य ही आर्थिक और व्यापारिक निर्णयों का निर्धारण करते हैं। एक निर्णायक कारक रहे हैं। माताओं, पत्नियों, बहनों और यहाँ तक कि दादियों और नानियों के रूप में महिलाओं ने भी चुपचाप रहकर इन व्यवसायों में महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाई हैं। तमिलनाडु में सबसे बड़े होटल स्वामियों के मध्य कराए गए एक सर्वे में यह पता चला है कि लगभग 20 प्रतिशत मामलों में, विवाहित बहिनों ने अपने भाइयों की सहायता उनका व्यावसायिक उपक्रम आरम्भ करने के लिए की।

उद्योजकों के बीच पारस्परिक भरोसा और विश्वास एक महत्वपूर्ण कारक है जो उन्हें व्यापारिक गतिविधियों को सुगम बनाने में सहायता करता है। करुर गैर–कॉरपोरेट वित्त संस्थानों के बीच किये गए एक अध्ययन ने यह प्रदर्शित किया है कि उधार देने वाले जब स्थानीय व्यापारियों को ऋण देते हैं तो वह उनसे दस्तावेज़ नहीं मांगते। काफी हद तक अलिखित शर्तें और बुनियादी मूल्य प्रणाली ही व्यापारिक गतिविधियों को प्रभावित करती हैं विशेषरूप से गैर–कॉर्पोरेट केन्द्रों में, और इस प्रकार व्यापारिक लेनदेन सुगम हो जाता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि लोग राज्य पर निर्भर होने के स्थान पर आत्मनिर्भर होना चाहते हैं। वे राज्य से कुछ अधिक अपेक्षा किए बिना अपने आप अपने धंधों को संचालित करते रहते हैं। अध्ययन यह भी तथ्य सामने लाते हैं कि विभिन्न आर्थिक केन्द्रों में जो विकास हुआ है वह सरकार से बहुत अधिक सहायता के बिना हुआ है। वास्तव में देश में अधिकतर शैक्षणिक संस्थानों का उन्नयन स्थानीय समुदायों के द्वारा ही हुआ है। इसके अतिरिक्त उन्होंने मंदिरों का निर्माण किया तथा अपने लिए आम सुविधाओं का निर्माण किया। राज्य का उत्तरदायित्व हमारे समाज के आत्मनिर्भर स्वभाव के कारण बहुत कम हो गया है।

इस प्रकार भारतीय परिदृश्य में आर्थिक प्रक्रियाएं अन्य देशों और विशेषकर पश्चिम से सर्वथा भिन्न है। व्यक्तिवाद, उपभोक्तावाद, अनुबंध आधारित संबंध और राज्य पर निर्भरता पश्चिमी परिदृश्य की मुख्य विशेषताएं हैं।

एंगस मैडिसन द्वारा वैश्विक आर्थिक इतिहास का पिछले दो हज़ार वर्ष का अध्ययन यह दिखाता है वैश्विक जीडीपी में भारत का हिस्सा 0 ईसापूर्व 32.9 प्रतिशत था, जो विश्व में सबसे अधिक था। गत दो सहस्त्राबदियों में भारत विश्व की सबसे समृद्ध अर्थव्यवस्था अट्ठारहवीं शताब्दी तक रही थी। यह इस तथ्य को इंगित करता है कि भारत के पास प्राचीन काल से ही अपनी एक अनूठी आर्थिक प्रणाली थी। भारत को अपना यह सर्वोच्च स्थान यूरोपियों के द्वारा वृहद स्तर पर किए गए हस्तक्षेप तथा देशी प्रक्रियाओं के विध्वंस के कारण खोना पड़ा।

यह भारत की सुदृढ नींव तथा देशी प्रक्रियाओं के कारण ही है कि भारत एक सशक्त देश के रूप में पुनः उभर रहा है। अध्ययन यह भी दिखाते हैं कि हमारे समाज में बहुत ही दुरूह समय से खुद को बचाकर ले जाने की और बाहरी व्यवस्था का भारतीयकरण करने की अद्भुत क्षमता है। ■

*pkspathi@gmail.com*

# प्राचीन भारत में शूद्रों की स्थिति

**महाभारत** : देश में उत्पादन की प्रचुरता एवं वह समग्र उत्पादन शिल्प–सापेक्ष शूद्र जातियों या श्रेणियों द्वारा ही किया जाना और उसके आधार पर ही राजकोष से भी अधिक धन शूद्र जातियों के पास होता था। इसलिए राज्य के अतिथितियों का आतिथ्य भी महाभारतकाल में शूद्रों पर अवलंबित था। महाभारत में शूद्र का धर्म अतिथियों के सत्कार व उनके भोजन–आवास आदि बताकर उन्हें अत्यंत महत्व प्रदान किया है, जिसका निम्न श्लोक में स्पष्ट कथन है।

*सशूद्रः संशिततपा जितेंद्रियः।*
*सुश्रुतिथिं तपः संचिनुते महत्।।*

**अथर्ववेदः** अथर्ववेद के शब्दों की निरुक्ति (निर्वचन) में अपने श्रम के स्वेद (पसीने) से विविध उत्पादकीय कार्य में रत वर्ग को शूद्र कहा गया है अर्थात् परिश्रमपूर्वक विविध प्रकार की मूल्यवान वस्तुओं के उत्पादन में रत रहने वाले वर्ग को शूद्र कहा गया है। यथा शूद्र शब्द का निर्वचन निम्नानुसार है–

*श्रमस्य स्वेदेन उत्पादन रत एव शूद्रः*

– **प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा**
*'अजेय भारत' पृ. 45 (साभार)*

डॉ. कपिल तिवारी

# प्रकृति और पर्यावरण

*ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः,*
*पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधायः शान्तिः।*
*वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः,*
*सर्व शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्तिरेधि।।*
*ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।*

(हे परमात्मा स्वरूप! शांति कीजिए, वायु में शांति हो, अंतरिक्ष में शांति हो, पृथ्वी पर शांति हो, जल में शांति हो, औषध में शांति हो, वनस्पतियों में शांति हो, विश्व में शांति हो, ब्रह्म में शांति हो, सब में शांति हो, चारो ओर शांति हो, हे परमपिता परमेश्वर शांति हो, शांति हो, शांति हो।)

युजर्वेद अ. 36, मंत्र 8

इस स्थूल भौतिक प्रकृति की कारणभूत सत्ता 'परा प्रकृति' के रूप में अस्तित्वमान होती है। जो तत्वों और गुणों से अतीत है, इसीलिए उसे 'तत्वातीत' और 'गुणातीत' कहा गया है। इसी कारण यह सूक्ष्म और अदृश्य है। यह सतगुण और आकाश तत्व का आधार लिए है

भारतीय ज्ञान परंपरा ने भौतिक प्रकृति को ''अपरा'' कहा है।[1] यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्वों का एक संगठन है। सत्, रज और तम–इन तीन गुणों के साथ यह स्थूल प्रकृति मनुष्यों सहित सब प्राणियों एवं वनस्पतियों की प्राणमय सत्ता में स्वयं को अभिव्यक्त करती है। काल की सत्ता इसमें परिवर्तन की एक शक्ति के रूप में सक्रिय होती है जिसके अंतरगत उनमें उत्पत्ति, विकास और नाश के अपरिहार्य परिवर्तन होते हैं ताकि एक नवसर्जना की पीठिका जगत में निरंतर बनी रही।

इस स्थूल भौतिक प्रकृति की कारणभूत सत्ता 'परा प्रकृति' के रूप में अस्तित्वमान होती है। जो तत्वों और गुणों से अतीत है, इसीलिए उसे ''तत्वातीत'' और ''गुणातीत'' कहा गया है। इसी कारण यह सूक्ष्म और अदृश्य है। यह सतगुण और आकाश तत्व का आधार लिए है। आकाश एक अर्थ में कोई तत्व नहीं है, उसके लिए विराट विस्तार की शून्यता में शेष चारों तत्वों की समष्टि समाहित रहती है। ठीक इसी प्रकार तम् और रज की तरह सत् कोई गुण नहीं है बल्कि चराचर अस्तित्व का सहज स्वभाव है इसीलिए ज्ञानमार्गियों ने विराट सत्ता को सत्यरूप कहा तो भक्तिमार्गियों ने इसे 'प्रेमरूप' कहा।[2]

परा से अपरा प्रकृति तक विराट अस्तित्व का एक महान संतुलन सक्रिय रहता है। सूक्ष्म प्रकृति भौतिक प्रकृति को और भौतिक प्रकृति में समुद्र, नदियां, पर्वत, रेगिस्तान और पठार, विशाल मैदान और बर्फीले विस्तार तथा वन सब एक–दूसरे को साधे हुए हैं। असंख्य प्रकार के वृक्ष और वनस्पतियां, अनगिनत प्राणियों के जीवन का आधार हैं और यह सब मनुष्य के जीवन को संभव करते हैं। यह प्राणिक सत्ता है जो प्रकृति के तत्वों और गुणों से निर्मित है। यह रूपों में व्यक्त होते संसार का यथार्थ है, जिसमें 'परस्परता' जीवन के एक महान नियम से संचालित है। कोई भी 'स्वायत्त' और स्वतंत्र सत्ता की तरह नहीं है। सबका जीवन एक दूसरे से बंधा हुआ है, फिर भी स्वतंत्र।[3]

'परा' और 'अपरा प्रकृति' की समष्टि में यह अस्तित्व एक 'विशाल निसर्ग' है। भारतीय ज्ञान परंपरा में इसे 'चराचर सत्ता' कहा गया है, इसे संचालित करने वाले महानियम स्वयं इसमें संस्थित हैं, इन महानियमों को ही ज्ञान परंपरा ने 'ऋत' कहा है। 'ऋतु' शब्द इसी से बना है। इसी कारण भौतिक जगत में विशाल निसर्ग ऋतु आधारित प्रकृति कहलाता है।[4]

'परिणाम' पैदा करना इसका 'गुणधर्म' है। 'प्रकृति' प्राणिक सत्ता है, यद्यपि इसके भी दो भाग किए गए हैं–जड़ और चेतन प्रकृति के रूप में हम इसे जानते हैं। तात्विक रूप से इस जगत

में संपूर्णतया 'जड़' कुछ भी नहीं है, जिसे हम 'जड़' समझते हैं वह वैज्ञानिक दृष्टि से 'न्यूनतम चैतन्य' है क्योंकि सभी भौतिक रूप तत्वतः ''ऊर्जा'' हैं।[5]

पिछले कुछ समय से इसे 'पर्यावरण' कहा जाने लगा है क्योंकि इसका संबंध ''मनुष्य और मनुष्य जीवन के संदर्भ में प्रकृति'' है।

इसमें विशाल प्राणिक सत्ता और वानस्पतिक विश्व की अपनी बहुलता के बजाय मनुष्य के लिए जरूरी वातावरण और चीजें हैं और वनस्पतियां नष्ट की जा सकती हैं। यही विकास का आधुनिक वैज्ञानिकऔरतकनीकीतर्कहै।अबजबअबाधित विकास ने मनुष्य के जीवन को ही संकट में डाल दिया है तब प्रकृति ''पर्यावरण की एक आधुनिक चिंता'' के रूप में हमारे सामने है। सृष्टि में मनुष्य को 'केंद्र' मानने वाली इस दृष्टि ने ही हमें प्रकृति के सीमित अर्थ में 'पर्यावरण' और 'पर्यावरण का संकट' जैसे शब्द और चिंताएं दी हैं।

जीवन को ही नष्ट करने वाली इस दुखद कथा में पर्यावरण की चिंता पर हमारे 'स्वार्थ और 'लालच भारी पड़ते हैं। 'स्वार्थ और चिंता' एक साथ चलते हैं क्योंकि धरती पर जीवन नाश की भयानक आपदा मनुष्य को अपनी मृत्यु की तरह दूरागत और असंभव लगती है।

पिछली एक सदी में दुनिया भर में प्रकृति के अर्थ विस्तार का बड़ा संकुचन हुआ है। यह करीब–करीब पर्यावरण के अर्थ में उपयोग किया जाने लगा है। बहुत सारे संगठन पेड़ों की रक्षा, जल के प्रबंधन, वायु की शुद्धता, भूमि के कटाव को रोकने की दिशा में काम कर रहे हैं। मनुष्य ने जब तक अपना जीवन निरापद समझा था तब तक 'विकास' के लिए प्रकृति को नष्ट करने अथवा दोहन करने में कोई बुराई नहीं समझी जाती थी। जब धरती पर इस अबाधित प्रकृति–शोषण के कारण मनुष्य का जीवन खतरे में पड़ा तब उसे चिंता हुई कि वनों को बचाना है, नदियों, सरोवरों के जल की रक्षा करते हुए उसका सही प्रबंधन करना है और निरंतर अशुद्ध होते वायुमंडल में सांस लेना भी दूभर हो गया है इसलिए शुद्ध–साफ हवा के लिए कुछ करना चाहिए।

चूंकि मनुष्य अपने अलावा इस विशाल–विविध प्रकृति में किसी के जीवन के अधिकार को नहीं मानता, इसीलिए एक निर्ममता चलती रहती है जिसमें दूसरे सभी जीवन नष्ट किए जाते हैं। जीवन एक नैसर्गिक अधिकार है जैसे हमारा वैसे ही प्रकृति की विविधता में जन्म लेने वाले प्रत्येक जीवन का। जैसे एक वृक्ष को जीने का नैसर्गिक अधिकार है, वैसे ही भूमि, नदियों, पर्वतों, वनों, जलचर, थलचर और नभचर में अस्तित्वमान प्रत्येक प्राणसत्ता का जीवन।

**दुनिया भर की सरकारें और बाजार तथा बहुराष्ट्रीय निगम और शक्तिशाली लोग विकास के इसी जीवन विरोधी रूप से शक्ति अर्जित करते हैं, मुनाफा कमाते हैं और जीवन की ओर से आती प्रत्येक आवाज को अनसुना करते हैं**

यूरोप में कुछ अर्सा पहले एक वैचारिक आंदोलन चला था 'प्रकृति की ओर लौट चलने का'।[6] इसका क्या अर्थ था? इसमें आखिर क्या इच्छा और कौन–सा विचार काम कर रहा था। क्या पश्चिम में कुछ विचारवान और संवेदनशील लोगों को यह प्रतीत हुआ कि मनुष्य प्रकृति से दूर हो गया है? और वापस उस प्रकृति में लौटकर एक सहज और निर्दोष जीवन जिया जा सकता है?

अगर यह प्रतीति सच है तो इसमें यह स्वीकार भी निहित है कि मनुष्य ने जीवन की एक प्रकृति विरोधी और एक अर्थ में जीवन विरोधी दिशा पकड़ ली है। शायद यह सच था।

उस दिशा में दौड़ते आधुनिक सभ्यता ने एक वृत्त पूरा कर लिया है। वह परिणाम तक पहुंच चुकी है जिसके अर्थ बहुत भयावह हैं। बहुत सारे विचारक, साहित्यकार, वैज्ञानिक पिछले दो दशकों से चेतावनी दे रहे हैं कि पृथ्वी खतरे में है और इसमें जीवन का कोई भविष्य नहीं बचा।

फिर भी विकास के रूप और ढंग अर्थात दिशा और लक्ष्य को बदलने के लिए कुछ नहीं किया जा रहा।

दुनिया भर की सरकारें और बाजार तथा बहुराष्ट्रीय निगम और शक्तिशाली लोग विकास के इसी जीवन विरोधी रूप से शक्ति अर्जित करते हैं, मुनाफा कमाते हैं और जीवन की ओर से आती प्रत्येक आवाज को अनसुना करते हैं। इन्होंने संसार भर की वैज्ञानिक और तकनीकी प्रतिभा को अपने राज्यों अथवा प्रतिष्ठानों में रख लिया है जिसका काम विज्ञान और तकनीक के शोध और विकास को मुनाफे में बदलना और सरकारों को शक्तिशाली बनाना है।

'प्रकृति' की ओर लौटा नहीं जा सकता है। जीवन पीछे नहीं लौटाया जा सकता है। प्रकृति के साथ एक 'निर्दोष पशु' की तरह रहना अन्ततः सहजवृत्तियों के जीवन की तरह ही है–ऐसी प्राकृतिकता का कोई अर्थ नहीं है।

एक रास्ता प्रकृति के साथ समरसता और सम्मान का भी है जिसमें हम प्रकृति के नैसर्गिक उपकरण की तरह नहीं परस्परता में जीवन को संभव करने वाली प्रणाली का अनुगमन करते हैं।

'प्रकृति' और 'पर्यावरण' के इस अंतर को समझे बगैर हम प्रकृति के संबंध में भारतीय ज्ञान परंपरा का तत्वार्थ नहीं समझ सकते–एक मानव अस्तित्व का आधार है और दूसरी उसकी जीवन पारिस्थितिकी अथवा अवस्था।

ज्ञान परंपरा का दूसरा प्रत्याख्यान प्रकृति और मनुष्य के अभेद का है।

जिन पंचतत्वों और तीन गुणों से भौतिक 'अपरा प्रकृति' की समग्रता बनती है–उन्हीं तत्वों और गुणों से मनुष्य का भी अस्तित्व बना है। मनुष्य के भौतिक अस्तित्व के साथ मन, बुद्धि और अहंकार की चेतना तथा अंतरतम की चेतना एक दिव्य आत्मा के रूप में है। ज्ञान परंपरा इसे जीवात्मा के रूप में व्याख्यायित करती है।[7]

भौतिक शरीर से लेकर 'मन' तक अस्तित्व का भौतिक आधार मनुष्य में सक्रिय रहता है। 'मन' 'विचार' और 'स्वप्न' की क्रिया संपन्न करने वाला यंत्र है। एक अर्थ में स्वयं विचार भी एक भौतिक शक्ति है। आधुनिक विज्ञान ने भी इसे स्वीकार किया है। काल की शक्ति को भी 'मन' तक ही माना गया है। यहां तक मनुष्य के अस्तित्व

**यदि भौतिक प्रकृति नष्ट होगी तो मानव अस्तित्व भी नष्ट होगा। यदि प्रकृति का पर्यावरण 'असंतुलित' होगा तो मनुष्य का भी संतुलन बिगड़ेगा। इस रहस्यमय और अद्‌भुत संतुलन के नियम को समझना ही प्रकृति और मनुष्य के अभेद की भारतीय दृष्टि है**

में 'अपरा' प्रकृति है। इसके आगे परा प्रकृति तत्व और गुणों से अतीत है तथा काल और दिक् की क्रिया से परिवर्तनशीलता के नियम यहां काम नहीं करते।

यह 'तत्वातीत' और 'गुणातीत' इसीलिए 'कालातीत' अस्तित्व चेतना है।

प्रकृति और मनुष्य तथा मनुष्य चेतना के इस अभेद को हमें इसी समग्रता में समझना चाहिए। मनुष्य और प्रकृति दो चीजें नहीं–मनुष्य लाखों, करोड़ों प्राणमय जीवन सत्ताओं में से अस्तित्व का एक आयाम है। यदि भौतिक प्रकृति नष्ट होगी तो मानव अस्तित्व भी नष्ट होगा। यदि प्रकृति का पर्यावरण 'असंतुलित' होगा तो मनुष्य का भी संतुलन बिगड़ेगा। इस रहस्यमय और अद्‌भुत संतुलन के नियम को समझना ही प्रकृति और मनुष्य के अभेद की भारतीय दृष्टि है।

ज्ञान परंपरा भारत में स्वयं को दो रूपों में पूर्ण करती है। एक, शास्त्र की तरह और दूसरी लोक की तरह। यह भारत में ज्ञान की दो अलग धाराओं के बजाय अनुभव और साधना से अर्जित ज्ञान की एक विचित्र संपूर्णता है। शास्त्र का ज्ञान विशेष–विशेष साधनाओं की विशेष अस्थाओं में संभव हुआ 'प्रकाशानुभव' है तो लोक का ज्ञान जीवन के अनुभव की शिक्षा से जुड़ा है। भारत ने सदा अनुभव को ज्ञान कहा है–शेष को जानकारियां।

आरण्यक[8] और लोक समुदाय और उनका प्रकृति बोध, ठीक से समझने की आवश्यकता है। शास्त्र के ज्ञान की परंपरा के समांतर भारत के परंपराशील जीवन की एक दृष्टि है। आरण्यक समाज प्रकृति के साथ एक अभेद में है, वे अपने को प्रकृति को देखने वाले नहीं, उसी का एक अटूट अभिन्न हिस्सा मानते हैं। इन समुदायों की सांस्कृतिक और धार्मिक परंपरा का संपूर्ण आधार प्रकृति में निहित है। देवता मातृशक्तियां, पूजा विधियां, अनुष्ठान सभी वनों और वृक्षों को केंद्र में रखकर रचे गए हैं। वहीं ग्रामीण लोक समाज यद्यपि अपने को प्रकृति से भिन्न और उसे देखने वाला समझता है, तो भी उसके लिए प्रकृति 'पूज्य' और 'पवित्र' है।

लोक के बोध का आधार पृथ्वी, प्रकृति, स्त्री, नदी, गाय और मातृभाषा के रूप में ये षट्‌मातृकाएं[9] लोक के संपूर्ण प्रकृति बोध का केंद्र है और भारत में लोक के अर्थ विस्तार की वास्तविक व्याख्या भी। शास्त्र और लोक के ज्ञान की इस संपूर्णता में ही हमें भारत में प्रकृति जो अब पर्यावरण बची है, उसे समझना चाहिए। ■

*drkapiltiwari05@rediffmail.com*
संपर्क–0755–2775122

**संदर्भ संकेत**

1 *श्री महामहोपाध्याय गोपीराज कविराज– भारतीय संस्कृति और साधना*
2 *श्री महामहोपाध्याय गोपीराज कविराज–भारतीय संस्कृति और साधना*
3 *आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी –मध्यकालीन बोध का स्वरूप*
4 *वासुदेव शरण अग्रवाल–जनपद*
5 *मिस्ट्री ऑफ वेद–श्री अरविंद*
6 *यूरोपीय विचारक ज्यां जैक रूसो ने 18वीं शताब्दी में प्रकृतिवाद का दर्शन दिया। इसे विभिन्न राजनीतिक विचारकों और साहित्यकारों ने आगे बढ़ाया*
7 *बृहदारण्यक*
8 *'सम्पदा'–आदिवासी लोककला अकादमी, भोपाल (संपादित)*
9 *चौमासा–आदिवासी लोककला अकादमी, भोपाल, लोक देवता विशेषांक, 80वां अंक, वर्ष 2001*

# प्रकृति पूजक संस्कृति

कुवां पूजन और तीज, जो कि मूलतः वर्षा जल के स्वागत के प्रतीक त्यौहार रहा है, से वर्ष पर्यंत त्यौहारों का आगमन शुरू होता था और गणगौर के साथ पूर्ण जैसा कि उल्लेख है–तीज त्यौंहारा बावड़ी ले डूबी गणगौर।

संस्कृतियां विलुप्त नहीं होती हैं। दिवाली, होली तो मूलतः कृषि से जुडे त्यौहार हैं ही–औणम, बैशाखी, पौंगल, बीहू सबकी पृष्ठभूमि में जल और जल से जुड़ी ढेरों कहानियां हैं, एक सतत कथानक है। जल संपदा थी, कृषि संपदा था, गौदान सबसे बड़ा दान होता था परंतु अब टका धर्म....के युग में साध्य को साधन और साधन को साध्य बना दिया गया है ■

**–आशुतोष जोशी**
*'रहिमन पानी राखिए'*
*श्री अनुपम मिश्र की पुस्तक के*
*संपादकीय से (साभार)*

# दैशिक शास्त्र: एक परिचयात्मक कथ्य

रवींद्र महाजन

दैशिक शास्त्र का प्रतिपादन है कि कोई भी समाज अपने प्रकृति-प्रदत्त मूल स्वभाव के अनुरूप ही यानी राष्ट्र की चिति के आलोक में देश के विराट का जागरण करके ही अपने गौरव की रक्षा करते हुए अपनी सुख-समृद्धि सुनिश्चित कर सकता है। यह सार्वजनीन सत्य है। इस दृष्टि से यह ग्रंथ स्वाधीनता आंदोलन के नेतृत्व की समझ एवं सरोकारों से हमें अवगत कराता है

## पुस्तक की पृष्ठभूमि

उत्तराखंड के कुमाऊं क्षेत्र के पूज्य संत श्री सोम्बारीबाबा के मार्गदर्शन में बद्रीसाह टुलधरिया द्वारा सन 1921 इ. में तिलक स्मारक ग्रंथ के रूप में पुणे से प्रकाशित 'दैशिक शास्त्र' एक असाधारण ग्रंथ है। यह ग्रंथ सनातन हिंदू संस्कृति के भारतीय राष्ट्रव्यवस्था के मूलतत्वों के प्रति समाज को सजग और सन्नद्ध करता है तथा राष्ट्र की चिति के आलोक में देश के विराट के जागरण का पथ प्रशस्त करता है।

## लेखक की पृष्ठभूमि

स्वामी विवेकानंद सबसे पहले 1890 में अल्मोड़ा गए। उस समय वे प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं थे। अल्मोड़ा के खजांची बाजार में बद्रीसाह टुलधरिया जी रहा करते थे। वे अल्मोड़ा के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और लाला बद्रीसाह के नाम से जाने जाते थे। उन्होंने स्वामी जी को अपने यहां आमंत्रित किया। स्वामीजी उस प्रवास में और बाद में 1897 के मध्य में जब पुनः अल्मोड़ा गए थे तब भी बद्रीसाह जी के ही यहां रहे। वहां स्वामीजी से चर्चा होती थी। चर्चा में स्वामी जी ने बताया कि 'ईश्वर की मूर्ति को हमें कुछ समय के लिए बगल में रखना चाहिए। समाज पुरुष ही हमारा ईश्वर है। समाज की और राष्ट्र की पूजा साक्षात ईश्वर की पूजा है।' इस पर बद्रीसाह जी ने पूछा, यह बात किसी वेद, उपनिषद या पुराण में लिखी है? और यदि नहीं तो हम आपकी बात क्यों माने? स्वामी जी ने तुरंत वेद और उपनिषदों में उल्लेखित ऋचाओं के संदर्भ दिए। बद्रीसाह जी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने सारे संदर्भ स्वामी जी से उतार लिए और बाद में वाराणसी जाकर उन ग्रंथों का अध्ययन किया। स्वामीजी के बताए हुए विचार उन ग्रंथों में मिल रहे थे।[1] श्री टुलधरिया को पूज्य संत श्री सोम्बारीबाबा का कृपा प्रसाद एवं इस विषय में मार्गदर्शन भी प्राप्त था। उन्होंने लोकमान्य तिलक जी के 'कर्मयोगशास्त्र (गीतारहस्य)' नामक पुस्तक से भी प्रेरणा पाई। बद्रीसाह जी के लिखे दैशिक शास्त्र के एक भाग को तिलक जी ने आशीर्वचन भी दिए।[2]

## पुस्तक का महत्व

दैशिक शास्त्र का प्रतिपादन है कि कोई भी समाज अपने प्रकृति-प्रदत्त मूल स्वभाव के अनुरूप ही यानी राष्ट्र की चिति के आलोक में देश के विराट का जागरण करके ही अपने गौरव की रक्षा करते हुए अपनी सुख-समृद्धि सुनिश्चित कर सकता है। यह सार्वजनीन सत्य है।

इस दृष्टि से यह ग्रंथ स्वाधीनता आंदोलन के नेतृत्व की समझ एवं सरोकारों से हमें अवगत कराता है। स्वराज्य के संघर्ष में विविध स्तरों पर नेतृत्व की यह भी स्वाभाविक आकांक्षा थी कि स्वाधीन भारत भूमि में 'स्व-तंत्र' की स्थापना शीघ्रातिशीघ्र हो। उनका निश्चित मत था कि अरस्तू और प्लेटो के चिंतन के अनुरूप यूरोप अग्रसर हुआ है और वहां सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक तंत्र विकसित हुए। भारत भी अपनी चिति के अनुरूप ही अतीत में आगे बढ़ा था और आगे भी उसी प्रकाश में बढ़ना होगा। दैशिक शास्त्र इस दिशा का उद्बोधक ग्रंथ है।

भारतीय मनीषा के अनुसार समाज के अभ्युदय और निःश्रेयस के लिए जिन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सूत्रों का विचार होना चाहिए वे सारे यहां एक आकृतिबंध outlined में मिलते हैं। इस तरह का यह अनूठा ग्रंथ है। व्यवस्थाएं बदलती जाती हैं, उद्देश्य के अनुसार आवश्यक परिवर्तन करने होंगे। इन पर सम्यक विचार करने हेतु यह ग्रंथ अत्यंत उपयुक्त है।

यह विचार कहां से लिए हैं, इसका संदर्भ पुस्तक में न उपलब्ध होने से यह पता नहीं चलता कि किन-किन ग्रंथों को मूल रूप के लिए देखा

जाए? इस पर शोध की आवश्यकता है।

## पुस्तक में प्रतिपादित मुख्य विषय

लेखक के शब्दों में ''इस पुस्तक का उद्देश्य है अपने लोगों को अपने दैशिक शास्त्र की स्मृति कराने का।[3] दैशिक शास्त्र का अर्थ होता है देश की रक्षा करने वाला शास्त्र।

पुस्तक में पांच (देश भक्ति, दैशिकधर्म, स्वतंत्रता, विराट, दैवी सम्पद् योगक्षेम) अध्याय हैं जो 18 आह्निकों में बांटे गए हैं। सुखी, समृद्ध राष्ट्रजीवन के तत्व एवं व्यवस्थाओं का विमोचन किया गया है। कुछ प्रमुख अवधारणों का विवेचन देखें।

सुख–सुख की विवेचना से पुस्तक की शुरुआत होती है क्योंकि प्राणी जो कुछ करता है, सब सुख की इच्छा से करता है, उसकी समस्त चेष्टायें उसी के लिए हुआ करती हैं....स्वलक्ष्य सिद्धि से जो अनुकूल वेदना होती है उसको मानव सुख कहते हैं।....मानव सुख साधने के लिए मुख्य चार बातें आवश्यक होती हैं:1 सुसाध्य आजीविका, 2 शांति, 3 स्वतंत्रता, 4 पौरुष। ये चारो जब तक समाज में समष्टिगत नहीं होते हैं तब तक वे एक संग व्यक्तिगत भी नहीं होते हैं और यदि दैव योग से हो भी गए तो वे फलीभूत और चिरस्थायी नहीं होते हैं।[4]

## समष्टि की महत्ता

सामाजिक जीव होने से मनुष्य का अपने समाज से वहीं संबंध होता है, जो अंग का अपने अंगी से और पत्र का अपने वृक्ष से होता है। अतः गायत्री आदि वेद मंत्रों में जब सविता आदि देवताओं से कुछ अभीष्ट पदार्थ मांगा गया तो वह समष्टि के लिए ही मांगा गया।[5]

**व्यक्तिगत स्वार्थ से ह्रास**–तो क्या कारण है कि इन दिनों भारत संतानों को ऐसा घोर अन्न संकट हो रहा है? क्यों सुख उनसे ऐसा रूठा हुआ है? इसका कारण है भारत संतानों का जातिगत हित की उपेक्षा करके व्यक्तिगत हित साधन में लगा रहना। समस्त गुण राशि नाशी इस एक दोष ने भारत के अनंत गुणों को धूल में मिला दिया।[6]

**देशभक्ति**–जातिगत हित के लिए व्यक्तिगत हित की उपेक्षा करने से देश सुख–समृद्धि व्याप्त हो जाती है और इसके विपरीत गुण से देश में सुख का ह्रास हो जाता है। जातिगत हित के लिए व्यक्तिगत हित की उपेक्षा करना भारत की आधुनिक भाषाओं में देशभक्ति कहा जाता है। प्रश्न यह है कि मनुष्य में जातिगत हित के लिए व्यक्तिगत हित की उपेक्षा करने की सुबुद्धि कैसे उत्पन्न होती है और कैसे उस सुबुद्धि में उसकी स्थिति होती है। यह होता है चिति के प्रकाश और विराट की जागृति से। चिति प्रकाश और विराट जागृति का अर्थ इस समय यह समझ लेना चाहिए कि किसी नित्य ओजस्वी और जातिगत अर्थ–(यानी राष्ट्रीय ध्येय या लक्ष्य) का प्राधान्य में आना। बहुतों का बहुत सुख जैसा देशभक्ति से होता है वैसा और किसी प्रकार नहीं होता है क्योंकि देशभक्ति का उद्देश्य ही समष्टिहित साधन है।[7]

**देश**–दिशतीति देशः अर्थात जो भूमि अपनी आश्रित जाति को सूचित करती है वह देश कही जाती है। देश और जाति में समवाय संबंध होता है, जैसे बिना तंतुओं के कोई वस्त्र नहीं हो सकता है, किंतु बिना वस्त्र के तंतु होते ही हैं, एवं बिना जाति के कोई भूमि देश नहीं कही जाती है किंतु बिना देश के जाति होती ही है, कोई भूमि तब तक देश नहीं कही जा सकती है जब तक उसमें किसी जाति का मातृक ममत्व अर्थात ऐसा ममत्व कि जैसा पुत्र का माता के प्रति होता है, न हो।[8]

**समाज स्वयंभू**–दैशिक शास्त्र के अनुसार जाति सहज सावयव आधिजीविक सृष्टि है अर्थात मनुष्यों के कृत्रिम उपायों से जाति न तो बनती है और न नष्ट होती है.....सृष्टि के आरंभ में विशेष प्रकार की मानसिक प्रवृत्ति को लिए भिन्न–भिन्न अमैथुनिक(स्त्री–पुरुष संबंध से नहीं) जनसमुदाय[9] उत्पन्न हुए। कुछ समय तक ऐसी अमैथुनिक सृष्टि होती गई। इस अमैथुनिक सृष्टि में जिनकी मानसिक प्रवृत्ति एक प्रकार की थी वे स्वभावतः एक साथ रहने लगे। इस प्रकार उत्पन्न हुए समान प्रवृत्ति वाले जिस जनसमुदाय को एक प्रकार के प्राकृतिक निमित्त मिले उसे हमारे दैशिक शास्त्र में जाति के नाम से कहा गया।[10]

**चिति**–सृष्टि के आरंभ में प्रत्येक अमैथुनिक जन समुदाय की जो विशेष प्रकार की मानसिक प्रवृत्ति होती है और दायधर्मानुसार[11] (उत्तराधिकार से) जिसको उसकी मैथुनिक संतति प्राप्त करती है। चिति कही जाती है। यह चिति जाति के प्रत्येक व्यक्ति में परम सुख की भावना रूप से रहती है। इस सुख की तुलना में वे सब सुखों को तुच्छ समझते हैं, इसके लिए वे अन्य सब सुखों को त्याग देने को सन्नद्ध रहते हैं। मनुष्य में जीवात्मा का जो स्थान होता है उसी के समकक्ष चिति का राष्ट्र में।[12]

**विराट**–चिति से जागृत और एकीभूत हुई समष्टि की प्राकृतिक क्षेत्र शक्ति अर्थात अनिष्टों से रक्षा करने वाली शक्ति विराट कही जाती है। प्रकृति ने सामाजिक जीवों को एक विशेष प्रकार का सहानुभूति युक्त तेज दिया है जो व्यष्टि को समाज के हितार्थ आत्मत्याग करने को प्रेरित करता है जिससे व्यष्टियों में परस्पर सहानुभूति रहती है और समष्टि की रक्षा के लिए व्यष्टिगत शक्ति न्यूनाधिक रूप से एकीभूत होकर केंद्रस्थ रहा करती है। यह विराट व्यक्तिओं के हृदय में चिति के प्रकाश से ही जागृत होता है, चिति के अंतर्निहित होने पर विराट का भी ह्रास होता चला जाता है। यह विराट जाति रूपी शरीर का प्राण है।[13]

**देशभक्ति-जातिगत हित के लिए व्यक्तिगत हित की उपेक्षा करने से देश सुख-समृद्धि व्याप्त हो जाती है और इसके विपरीत गुण से देश में सुख का ह्रास हो जाता है। जातिगत हित के लिए व्यक्तिगत हित की उपेक्षा करना भारत की आधुनिक भाषाओं में देशभक्ति कहा जाता है**

**स्वतंत्रता**–स्वतंत्रता उस अवस्था को कहते हैं कि जब अपना हित किसी प्रकार किसी अन्य के हाथ में न होकर सर्वत्र और सर्वथा अपने हाथ में हो। किंतु मनुष्य चोले में ऐसी अवस्था पूर्ण रूप से प्राप्त हो नहीं सकती है, क्योंकि भगवती प्रकृति ने मनुष्य को देव और पशु के बीच की अवस्था दी है। मानवी स्वतंत्रता के तीन अंग होते हैंः 1 शासनिक, 2 आर्थिक 3 स्वाभाविक। बिना इन तीन प्रकार की स्वतंत्रताओं के कोई मनुष्य अपना प्राकृतिक हित साधन नहीं कर सकता है।[14]

## पुस्तक की कुछ और विशेषताएं

लेखक द्वारा समाधिजन्य[15] ज्ञान पर काफी बल दिया गया है।

यद्यपि पुस्तक प्राचीन भारतीय चिंतन प्रस्तुत करती है, लेकिन इसमें पाश्चात्य चिंतकों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है जिसमें प्लेटो, अरस्तू, नीत्शे इत्यादि के विचारों को यहां के विचारों के साथ रखा गया है। इससे सम्यक समीक्षा हो सकती है।[16]

देशभक्ति को अत्यंत महत्व देकर कहा गया है कि देशभक्ति राग क्षीण और सत्व विकास करने की महौषधि, मनुष्य को आत्मज्ञान का अधिकारी बनने की युक्ति, मोक्ष का द्वार खोलने की कुंजी है। देशभक्ति के बिना कैवल्य यदि जन्मजन्मांतरों में प्राप्त होगा तो तीव्र देशभक्ति से वह एक ही जन्म में प्राप्त हो सकता है।

इसमें कर्म की महत्ता स्थापित करते हुए कहा गया है कि बिना चिति और विराट के जागृत हुए किसी जाति का अभ्युदय नहीं हो सकता है। अतः तात्पर्य यह हुआ कि चिति और विराट की धारण ा जिस कर्म से होती है यथार्थ में वही दैशिक धर्म अथवा जाति धर्म है, न कि जड़ भूमि का प्रेम अथवा उसकी हितेच्छा।. .....यह स्मरण रहना चाहिए कि धर्म शब्द से कर्म प्रवृत्ति की सूचना होती है, न कि मानसिक अवस्था की, अर्थात देशहित की इच्छा मात्र होना दैशिकधर्म नहीं कहा जाता है। दैशिक धर्म उच्च कोटि का कर्मयोग है।

लेखक ने वर्णाश्रम व्यवस्था पर भी काफी बल दिया है। वर्ण–जाति व्यवस्था में पर्याप्त विकृति आ गई है। वर्ण–व्यवस्था का स्थान वर्ण–भेद ने ले लिया है। ऐसी स्थिति में पुरानी व्यवस्थायें एक तो टूट चुकी हैं, दूसरे वे कालबाह्य भी हो चुकी हैं। आश्रम व्यवस्था जैसी सुविचारित व्यवस्था दुनिया के किसी भी समाज में नहीं है ऐसा पूज्य विनोबा जी कहते हैं। यह व्यवस्था कुछ मात्रा में आज अस्तित्व में है। उसमें समयानुसार परिवर्तन के साथ यह आज भी उपादेय है।

**यह स्मरण रहना चाहिए कि धर्म शब्द से कर्म प्रवृत्ति की सूचना होती है, न कि मानसिक अवस्था की, अर्थात देशहित की इच्छा मात्र होना दैशिक धर्म नहीं कहा जाता है। दैशिक धर्म उच्च कोटि का कर्मयोग है**

कुछ बातों की प्रासंगिकता की समीक्षा होनी चाहिए, जैसे कि "भोक्ताओं की अपेक्षा उत्पादकों की संख्या अधिक होने से समाज में सदा अर्थ का प्राचुर्य रहा करता है, ऐसी आर्थिक अवस्था समाज के लिये श्रेयस्कारी होती है। उत्पादकों की अपेक्षा भोक्ताओं की संख्या अधिक होने से समाज में सदा अर्थ की दुर्लभता रहा करती है; ऐसी आर्थिक अवस्था समाज के लिये अनर्थकारी होती है। (पृ.107)' 'ग्रामों में सिक्कों का जितना प्रचार होता है उतना वहां आलस्य और भोग विलास का प्रचार होता है;.17

## पुस्तक के बारे में महानुभाव

इस दैशिकशास्त्र का कुछ अंश बहुत पहले लिखा गया था जो लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को भेजा गया था जिसे पढ़कर वह बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने इस पुस्तक के विषय यह लिखा I have read your दैशिकशास्त्र with great pleasure. My view is entirely in accord with yours and I am glad to find that it has been so forcibly put forward by you in Hindi,…"[18] लोकमान्य के कर कमलों से इस पुस्तक की भूमिका लिखी जानेवाली थी; किन्तु सहसा उनका शरीर त्याग हो जाने के कारण ऐसा न हो सका।

महात्मा गांधी जी ने नवजीवन अखबार में लेख लिखकर कहा कि दैशिक शास्त्र विद्यालयों में पढ़ाया जाना चाहिए।[19]

स्वाधीनता आन्दोलन की इसी धारा से जुड़ते हुए पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने दैशिक शास्त्र के अनेक सूत्रों के महत्व को परिणत कर पश्चिम और पूर्व की परिस्थितियों की समीक्षा करते हुए युगानुकूल दिशाबोध राष्ट्र के सन्मुख एकात्म मानव दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें देश की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संरचना के सूत्र विद्यमान हैं।[20]

## पुस्तक की आज उपयोगिता

समयानुसार देश की परिस्थिति बदलती रहती है। सभी बातें वैसी ही लागू नहीं होती, या नहीं लागू की जा सकती। लेकिन उनका तत्व समझकर सूत्रों को युगानुकूल कर ले सकते हैं और करना होगा। कुछ महत्वपूर्ण प्रतिपादन आज भी उतने ही उपादेय हैं।[21] ■

*auraent@gmail.com*
*संपर्क–9969069492*

**संदर्भ संकेत**

1 *हिंदी विवेक, अगस्त, 2013, पृ.50, ले. प्रशांत पोल*
2 *दैशिक शास्त्र ले. बद्रीसाह ठुलधरिया, प्रकाशक पुनरुत्थान ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2007 पुनर्प्रकाशित, पृ. 9 भूमिका*
3 *संदर्भ 2*
4 *उपरोक्त पृ.13*
5 *उपरोक्त 2 पृ.13–14*
6 *उपरोक्त पृ. 16*
7 *उपरोक्त 2 पृ. 17*
8 *उपरोक्त 2 पृ. 23*
9 *उपरोक्त 2 पृ. 28*
10 *उपरोक्त 2 पृ. 28–29*
11 *उपरोक्त 2 पृ. 29*
12 *उपरोक्त 2 पृ. 29*
13 *उपरोक्त 2 पृ. 29–30*

"पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विषय में जानकारियाँ बहुत ही सीमित हैं। डॉ. महेशचंद्र शर्मा ने इस विषय पर जवेषणात्मक अध्ययन किया है। इस शोध-ग्रंथ का प्रकाशन न केवल जनसंघ की राजनीति व विचारधारा के प्रति लोगों को लाभदायक जानकारियाँ देगा वरन् राजनीति शास्त्र की वैचारिक बहस को भी आगे बढ़ाएगा। दीनदयाल उपाध्याय व भारतीय जनसंघ को समझने के लिए यह शोध-ग्रंथ प्रामाणिक आधारभूमि प्रदान करता है।"

—डॉ. इकबाल नारायण

पूर्व कुलपति-राजस्थान विश्वविद्यालय,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय तथा पॉर्थ-ईस्ट हिल्ल यूनिवर्सिटी,
पूर्व सदस्य-सचिव, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्

"यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएँ, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।"

—डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी

## पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखित पुस्तकें

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2008 प्रकाशक
www.prabhatbooks.com
ISBN 978-93-5186-262-6
₹ 500/-

पं. दीनदयाल उपाध्याय
कर्तृत्व एवं विचार
डॉ. महेशचंद्र शर्मा

# पं. दीनदयाल उपाध्याय
## कर्तृत्व एवं विचार

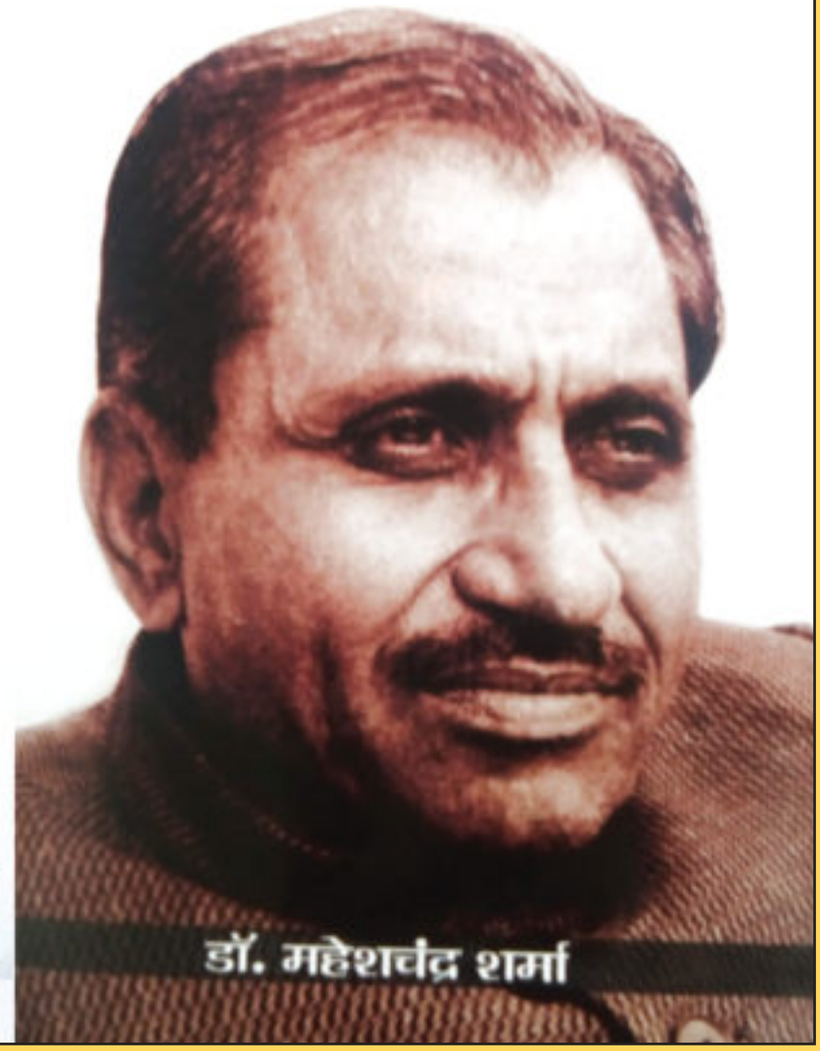

डॉ. महेशचंद्र शर्मा

EESL

**ENERGY EFFICIENCY SERVICES LIMITED**
A JV of PSUs under the Ministry of Power

# SWITCH KARO,

UJALA
Unnat Jyoti by Affordable LEDs for All

# SAVE KARO

AVAILABLE ONLY FOR **INR 70**

FREE REPLACEMENT FOR 3 YRS

SAVES **80%** ENERGY

AVAILABLE ONLY FOR **INR 220**

FREE REPLACEMENT FOR 3 YRS

SAVES **50%** ENERGY

5 - STAR RATED FANS ONLY FOR **INR 1110**

TECHNICAL WARRANTY OF 2.5 YRS

SAVES **33%** ENERGY

UJALA appliances are available at all DISCOM offices/ billing counters/Post offices/CSC counters and selected Petrol Pumps in your city. Please contact helpline number: **1800 180 3580** or mail us on **helpline@eesl.co.in**

For more information on the UJALA Scheme, visit www.ujala.gov.in

*Inclusive all taxes

# मंथन

**सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम**

'मंथन' की सदस्यता लें

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से प्रकाशित शोध त्रैमासिक पत्रिका 'मंथन' की सदस्यता लें। भारत–विचार–दर्शन पर केंद्रित इस पत्रिका की सदस्यता के लिए व्यक्ति/संस्थान कृपया निम्न पते पर सूचित करें और शुल्क एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, एकाउंट नं. 10080533188, आईएफएससी–एसबीआईएन0006199 में जमा करें।

## सदस्यता विवरण

नामः .....

पताः .....

..... राज्यः ..... पिनकोड : .....

लैंड लाइनः ..... मोबाइलः (1)..... (2).....

ई मेलः .....

### जन–मार्च 2019 से पुनर्निधारित मूल्य शुल्क

| | भारत में | विदेश में |
|---|---|---|
| एक प्रति | ₹ 200 | US$ 9 |
| वार्षिक | ₹ 800 | US$ 36 |
| त्रिवार्षिक | ₹ 2000 | US$ 100 |
| आजीवन | ₹ 25,000 | |


प्रंबध संपादक

**'मंथन' त्रैमासिक पत्रिका**

28, मीना बाग, मौलाना आजाद रोड., नई दिल्ली–110 011

दूरभाषः 9868550000, 011–23062611

ई–मेलः manthanmagzin@gmail.com, ekatmrdfih@gmail.com

14 *उपरोक्त 2 पृ. 40–41*
15 *उपरोक्त 2 पृ. 38*
16 *उपरोक्त 2 पृ. 86–90*
17 *उपरोक्त 2 पृ. 109*
18 *संदर्भ 2*
19 *दैशिक शास्त्र का द्वितीय संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1982, संपादक डॉ. गिरिराज शाह आईपीएस (नवजीवन 8.2.1923)*
20 *दीनदयाल उपाध्याय सम्पूर्ण वाड़मय, खण्ड–पृ.176 (पांचजन्य, 24 अगस्त 1959)*
21 *मूल पुस्तक दैशिक शास्त्र सन् 1921 ई. में तिलक स्मारक ग्रंथ के रूप में पुणे से प्रकाशित सन् 2007 में पुनरुत्थान ट्रस्ट 9 बी, आनन्दपार्क, कांकरिया, अहमदाबाद–380028, दूरभाष : 079–25322655 द्वारा पुनर्प्रकाशन, पृ.156, मूल्य रु.100.। इसका श्री पां.कृ. सावलापूरकर द्वारा मराठी अनुवाद भारतीय विचार साधना, पुणे से प्रकाशित। श्री अशोक भंडारी द्वारा अंग्रेजी अनुवाद विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित।*

# दैशिक शास्त्र का महत्व

आज आवश्यकता है कि लोगों को इसका भी ज्ञान कराया जाए कि भौतिक क्षेत्र में भी भारत का प्राचीन चिंतन बहुत कुछ दे सकता है। आज से चालीस वर्ष पूर्व एक तपःपूत तत्वदर्शी महात्मा श्री 108 सोंबारी बाबाजी महाराज से इन सिद्धांत का ज्ञान प्राप्त कर स्व. श्री बद्रीसाह टुलधरिया ने दैशिकशास्त्र नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की। पुस्तक की प्रेरणा लोकमान्य तिलक के कर्मयोग–शास्त्र से मिली।

गीता के आधार पर कर्मयोग का प्रतिपादन कर लोकमान्य भारत की आध्यात्मिकता को निवृत्ति से प्रवृत्ति के क्षेत्र में खींच लाए। भारतीय संस्कृति के सत्य तत्वों को हिमालय की कंदराओं से निकालकर जीवन के चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया। भारत के धर्म और संस्कृति कुछ विचारकों, तपस्वियों, दार्शनिकों, भक्तों व सन्यासियों के ही नहीं, वह तो प्रत्येक भारतवासी, गृहस्थ, समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ, किसान, मजदूर, व्यापारी और उद्योगपति, शिक्षक और विद्यार्थी प्रत्येक के जीवन का प्रतिपाद्य विषय बन गए। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को इसने अनंत शक्ति का स्रोत प्रदान किया।

किंतु लोकमान्य ने दर्शन दिया। व्यवहार में वे स्वतंत्रता के आंदोलन में लगे थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारा ढांचा क्या हो, इसकी चिंता उन्होंने एक व्यवहारी व्यक्ति के नाते नहीं की। दैशिकशास्त्र में यह बहुत कुछ हुआ है। उसमें राष्ट्र की व्यवहार संहिता के मौलिक सिद्धांतों का विवेचन किया गया है।

लोकमान्य ने स्वयं पुस्तक की पांडुलिपि देखी और विषय के विवेचन की सराहना की। यह कहा जा सकता है कि कर्मयोग शास्त्र और दैशिकशास्त्र दोनों पूरक ग्रंथ हैं। राष्ट्र के निर्माण में लगे हुए प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह इन दोनों का अध्ययन करे। आपकी सभी समस्याओं के निदान और निराकरण में उससे बहुत सहायता मिलेगी। पांचजन्य ने 'लोकमान्य के सपनों का भारत' इस लेखमाला के अंतर्गत दैशिकशास्त्र के लेखक के विचारों को सुलभ बनाने का जो प्रयास किया है, वह स्तुत्य है। ■

**–दीनदयाल उपाध्याय,**
*पांचजन्य, 24 अगस्त, 1959*
*दीनदयाल संपूर्ण वाड़मय खण्ड 7,*
*पृ. 176–177 (साभार)*

# हिंदुत्व में धर्म

धर्म शब्द केवल हिंदू अर्थात् भारतीय संस्कृति और हिंदू दर्शन की प्रमुख संकल्पना है। इसलिए धर्म शब्द का संस्कृत व भारतीय भाषाओं को छोड़कर किन्हीं पश्चिमी या विदेशी भाषाओं में कोई तुल्य शब्द मिलना बहुत कठिन है। साधारण शब्दों में धर्म के बहुत से अर्थ हैं, जिनमें से कुछ ये हैं–

कर्तव्य, न्याययुक्त व्यवहार, सदाचरण आदि। वस्तुतः हिंदू मतानुसार आध्यात्मिक पूजा उपासना तो व्यक्तिगत आस्था का विषय है। धर्म तो मानव मात्र के लिए धारण किया जाने वाला आचार–विचार है। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों में कहीं उपास्य या उपासना मत का संदर्भ ही नहीं है।

मनु ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं–

*धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमि न्द्रियिनग्रहः।*
*धीर्विद्यासत्यमक्रोधोदशकं धर्मलक्षणम्।।*

धृति (धैर्य, क्षमा (दूसरो के द्वारा अनजाने में हुए अपराधों को क्षमा कर देना, क्षमशील होना), दम (अपनी वासनाओं पर नियंत्रण करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (अंतरंग और बाह्य शुचिता), इंद्रिय निग्रहः (इंद्रियों को वश में रखना), धी (बुद्धिमत्ता पूर्वक कार्य करना), विद्या (अधिक से अधिक ज्ञान अर्जित करना, सत्य (मन, वचन, कर्म से सत्य का पालन और अक्रोध (क्रोध न करना), ये दस धर्म के लक्षण हैं।) ■

**प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा**
*अजेय भारत, पृ. 35 (साभार)*

भारतीय ज्ञान परंपरा विशेषांक
अक्टूबर - दिसम्बर 2018

# नारी सशक्तीकरण एवं भारतीय परंपरा में स्त्री

अल्पना बिमल अग्रजीत

वेदों में स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा, शील, गुण, कर्त्तव्य, अधिकार और सामाजिक भूमिका का जो सुंदर वर्णन पाया जाता है, वैसा संसार के अन्य किसी धर्म ग्रंथ में नहीं है। वेद उन्हें घर की साम्राज्ञी कहते हैं और देश की शासक, पृथ्वी की साम्राज्ञी तक बनने का अधिकार देते हैं। वेदों में स्त्री यज्ञीय है अर्थात् यज्ञ समान पूजनीय है

पौराणिक ग्रन्थों में स्त्री को पूजनीय एवं देवी तुल्य बताया गया है।[1] चारों वेदों में नारी विषयक सैकड़ों मंत्र दिए गए हैं। जिनसे स्पष्ट है कि वैदिक काल में समाज में नारी को एक उँचा स्थान प्राप्त था। ऋग्वेद में 24 और यजुर्वेद में 5 विदूषियों का उल्लेख है। ऋगवेद में 422 मंत्र नारी विषयक हैं।[2] जिसमें कहा गया है कि गृहणी गृह देवी है, गृह लक्ष्मी है, कुल पालक है। नारी कुटुम्ब का चिराग है। स्त्री सरस्वती तुल्य प्रतिष्ठित है।[3] शतपथ ब्राम्हण में नारी का गौरवगाथा गाया है। अनेक ऋषिकायें वेद मंत्रों की द्रष्टा हैं– अपाला, घोषा, सरस्वती, सर्पराज्ञी, सूर्या, सावित्री, आदिति, दक्षायनी, लोपामुद्रा, विश्ववारा, आत्रेयी आदि।[4]

अथर्ववेद में पत्नी को 'रथ की धूरी' कहकर गृहस्थ का आधार बताया है। दक्ष स्मृति में पत्नी को घर का मूल माना गया है। यजुर्वेद के अनुसार वैदिक काल में कन्या का उपनयन संस्कार होता था। वेद नारी को अत्यंत महत्वपूर्ण गरिमा में उच्च स्थान प्रदान करते हैं। वेदों में स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा, शील, गुण, कर्त्तव्य, अधिकार और सामाजिक भूमिका का जो सुंदर वर्णन पाया जाता है, वैसा संसार के अन्य किसी धर्म ग्रंथ में नहीं है। वेद उन्हें घर की साम्राज्ञी कहते हैं और देश की शासक, पृथ्वी की साम्राज्ञी तक बनने का अधिकार देते हैं। वेदों में स्त्री यज्ञीय है अर्थात् यज्ञ समान पूजनीय। वेदों में नारी को ज्ञान देने वाली सुख समृद्धि लाने वाली, विशेष तेज वाली देवी विदूषी, सरस्वती, इन्द्राणी, उषा जो सबको जगाती है। जैसे अनेक आदरसूचक नाम दिए गए हैं।[5] इस युग में नारी अध्ययन–अध्यापन से लेकर रण क्षेत्र में भी जाती थी। जैसे कैकेयी महाराज दशरथ के साथ युद्ध में गयी थी। स्त्री को सभी क्षेत्रों और दिशाओं में उन्नति एवं प्रगति करने की स्वतंत्रता थी। उसे सामाजिक धार्मिक क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता थी। जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता थी। बिना विवाह जीवन व्यतीत करने की स्वतंत्रता थी। विधवा स्त्री पुनर्विवाह कर सकती थी। पर्दा प्रथा नहीं थी। इसलिए उस काल में नारी की प्रतिभा तथा ज्ञान अपूर्व और अद्भुत था। नारी के अंदर विचार शक्ति व आत्मबल के साथ उसके व्यवहार में शालीनता, विनम्रता तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व भी था।[6] इस कारण इन्हें विशिष्ट सम्मान व पूजनीय दृष्टि से देखा जाता था। सीता, सती सावित्री, अनसूईया, गायत्री आदि इनके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। इस काल में ही स्त्री की शक्ति रूप में स्थापना हुई। स्त्री को धन, शौर्य और ज्ञान की अधिष्ठात्री बताया गया।[7]

उत्तर वैदिक काल के प्रारम्भिक वर्षों में स्त्रियों की सम्मानजनक प्रस्थिति थी। उनके धार्मिक व सामाजिक अधिकार यथावत थे। इसी काल में जैन और बौद्ध धर्म का प्रचार व्यापक रूप से हो रहा था। अनेक स्त्रियों ने इन धर्मों के कार्य का प्रचार किया। पुराने जमाने में स्त्री के बिना कोई भी मंगल कार्य नहीं किया जाता था। प्रभु श्रीराम ने सीता के अनुपस्थिति में सीता की स्वर्ण प्रतिमा को वामभाग में बिठाकर ही यज्ञ किया था। बाद में जब इन धर्मों का पतन हुआ तो स्त्रियों की स्थिति में भी परिवर्तन आने लगे। पुरुष वर्ग की सुविधा के अनुसार नारियों की स्वतंत्रता पर अनेक प्रतिबंध लगा दिए गए। यज्ञ करना, वेदों का अध्ययन प्रतिबंधित हो गए, विधवा पुनर्विवाह पर रोक लगा दी गई। शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो गया। नारी के अधिकारों का हनन करते हुए उसे पुरुष पर आश्रित बना दिया गया। दहेज, बाल–विवाह, सती प्रथा आदि इन्हीं कुरीतियों की देन हैं। पुरुष ने स्वयं का वर्चस्व बनाये रखने के लिए ग्रंथों व व्याख्यानों के माध्यम से नारी को अनुगामिनी घोषित कर दिया।[8]

स्मृति युग में स्त्रियों के समस्त अधिकारों को

समाप्त कर दिया गया। स्मृतिकारों ने स्त्री को प्रत्येक अवस्था में परतंत्र बना दिया।

*पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने*
*पुत्रो रक्षति वार्द्धक्ये, न स्त्री स्वतंत्र्य महंति*

अर्थात् बचपन में पिता के संरक्षण में, युवा अवस्था में पति के, वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहने के आदेश दिए गए हैं।[9]

मनुस्मृति में जो कुछ भी स्त्रियों के प्रतिबंधों के बारे में लिखा गया था, उसे धर्मशास्त्र काल में व्यावहारिक रूप दिया गया। यह काल तीसरी शताब्दी से लेकर ग्यारहवी शताब्दी तक का माना गया है। इसमें सभी ग्रंथों की रचना मनुस्मृति के आधार पर होने लगी। पराशर, विष्णु और याज्ञवल्क्य संहिताओं की रचना इसका साक्षी है।[10] समाज और स्त्रियों पर अधिक से अधिक प्रतिबंध लगाये गये। स्त्री शिक्षा पर पाबंदी लग गई। कन्यायों के विवाह की आयु 10–12 वर्ष रह गई।[11] बाल विवाह का प्रचलन बढ़ गया। वर के चुनाव में कन्या का अधिकार समाप्त हो गया। कुलीन विवाह, अनमेल विवाह, बहु–पत्नी विवाह, बाल विवाह जैसी कुरीतियाँ समाज में बढ़ती चली गई। इससे विधवाओं की संख्या बढ़ती चली गई। स्त्रियाँ माता से सेविका और गृह लक्ष्मी से याचिका बन गई। स्त्रियों के लिए विवाह ही एकमात्र धार्मिक संस्कार रह गया। नारी सिर्फ उपयोग की वस्तु बनकर रह गई। सभी क्षेत्रों में इसका स्थान पुरुषों से निम्न हो गया। स्त्रियों के पतन का सबसे अधिक जिम्मेदार धर्म शास्त्र काल रहा है।[12]

मध्य काल में स्त्रियों की दशा अत्यंत दयनीय हो गयी। समाज में उसका स्थान गौण हो गया। सारे अधिकारों से वंचित कर पराधीन बना दी गई, उसपर मनमाना अत्याचार भी होने लगे। इस काल के आरंभ में मुसलमान भारत आकर अपना साम्राज्य स्थापित करने लगे। उनका प्रभाव बढ़ने लगा। हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए स्त्रियों की स्थिति और भी अधिक बिगड़ने लगी। स्त्रीत्व के सतीत्व तथा रक्त की शुद्धता के लिए अब पांच–छह वर्ष की आयु में ही कन्याओं का विवाह होने लगा।[13] स्त्रियों को चारदीवारी में सिमटा दिया गया। पर्दे की प्रथा प्रचलित हुई। स्त्री शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह पर रोक लगा दी गई।

अंग्रेजी शासनकाल के आते आते भारतीय नारी को अबला की संज्ञा दी जाने लगी। दिन प्रतिदिन उसे उपेक्षा एवं तिरस्कार का सामना करना पड़ता। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने बड़े ही संवेदनशील भावों से नारी की स्थिति को व्यक्त किया है :

*'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,*
*आँचल में है दूध और आँखों में है पानी।'*

विदेशी आक्रमणों व उनके अत्याचारों के अतिरिक्त भारतीय समाज में आयी सामाजिक कुरीतियाँ, व्यभिचार तथा हमारी परंपरागत रूढ़िवादिता ने भी भारतीय नारी को दीनहीन बना दिया।

19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारत के कुछ समाजसुधारकों ने जैसे राजाराम मोहन राय, दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद विद्यासागर तथा केशवचंद सेन ने अत्याचारी सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठाई। परिणामस्वरूप स्त्री पक्ष में कई कानून पास हुए जिनका समाज पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। वर्षों से चली आ रही स्त्री स्थिति की गिरावट में रोक लगी। औद्योगीकरण, शिक्षा का विस्तार, सामाजिक आन्दोलन व महिला संगठनों का उदय ने स्त्री की दशा में सुधार की ठोस शुरूआत की। इस काल रानी लक्ष्मी बाई, चांद बीबी आदि नारियाँ अनुकरणीय उदाहरण बनीं, जिन्होंने अपनी सभी परंपराओं से उठकर इतिहास के पन्नों पर अपनी अमिट छाप छोड़ी।[14]

स्वतंत्रता संग्राम में भी भारतीय नारियों के योगदान की अनदेखी नहीं की जा सकती। महात्मा गांधी ने स्त्रियों को घर से बाहर लाने का प्रयास किया जिसके फलस्वरूप स्त्रियों ने स्वतंत्रता आंदोलन आदि में भाग लेना प्रारंभ किया। कस्तूरबा गांधी जिसके अदम्य दृढ़ साहस ने गांधी जी को प्रेरणा दी। पंडित जवाहरलाल नेहरू की बहन विजय लक्ष्मी पंडित जो भारतीय राजनीति के इतिहास में पहली महिला मंत्री, संयुक्त राष्ट्र की पहली भारतीय महिला अध्यक्ष, एवं पहली महिला राजदूत थी, जिन्होंने मास्को, लंदन और वाशिंगठन में भारत का प्रतिनिधित्व किया। अरूणा आसफ अली जिन्होंने परिवार और स्त्रित्व के तमाम बंधनों को अस्वीकार करते हुए जंग–ए–आजादी को अपनी कर्मभूमि के रूप में स्वीकार किया। डॉ. लक्ष्मी सहगल, सरोजनी नायडू, सिस्टर निवेदिता, मीराबेन, इन्दिरा गांधी, सुचेता कृपलानी जैसी कई महिलाओं ने अदम्य साहस व सूझबूझ से सामाजिक और राजनीतिक श्रेष्ठता साबित की है।[15] स्वतंत्रता सेनानी उषा मेहता, दुर्गाबाई देशमुख, मैडम भीकाजी कामा, बेगम हजरतमहल, कनकलता बरूआ आदि ने भी अंग्रेजों के विरूद्ध पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर देश की सेवा की है।

भारतीय साहित्य में स्त्री की स्तुति की गई है तो व्यावहारिक तौर पर बात कुछ उलटी है। पुरुष मानसिकता प्रायः सभी जाति समुदायों में एक जैसी है। महिलाओं के सामने आज भी चुनौतियों का पहाड़ खड़ा है।[16] स्त्री हर ओर से उपेक्षित है। आज गर्भ से लेकर समाज तक के सफर में वह हर कहीं असुरक्षित है। भ्रूण हत्याओं से लेकर हर अवस्था में स्त्री उत्पीड़न देखने को मिलता है। दहेज प्रथा, भारतीय समाज के माथे पर एक बहुत बड़ा कलंक बन चुका है। शिक्षा एवं मानव सभ्यता के क्रमिक विकास के प्रयासों से शहरी समाज की उच्च एवं मध्यवर्गीय महिलाओं के स्थिति में अवश्य परिवर्तन आया है, पर मुट्ठी भर महिलाओं की स्थिति बदलने से समाज की तस्वीर बदलने वाली नहीं है।[17]

वास्तविकता तो यह है कि भारतीय नारी ने कभी भी अपने नारी धर्म का परित्याग नहीं किया। इतिहासकारों का मानना है प्रायः पुरुष शिकार पर जाते थे और नारी घर पर रहती थी। कुछ दानों को जमीन पर बिखरा कर नारी ने ही नव–पाषाण काल में खेती की खोज कर अस्थायी बस्तियों को स्थायी बनाकर एक क्रांति को जन्म दिया। जिसके बाद से शहरीकरण की स्थापना हुई। प्राचीन काल में स्त्री–पुरुष को एक–दूसरे का पूरक माना जाता था। स्टीफन आर. कोवे ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *seven habbits of highly effective people* के प्रारंभ में लिखा हैः *Interdependence is better than independence* वास्तव में अंतरनिर्भरता ही जीवन का मूल है।[18] स्त्री पुरुष के संदर्भ में अंतरनिर्भरता और सहजीवन एक सम्पूर्ण सत्य है। गांधी जी के चिंतन में यही है – जिस प्रकार स्त्री पुरुष बुनियादी तौर पर एक हैं उसी प्रकार उनकी समस्या भी मूल

में एक ही होनी चाहिए।[19] दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं, दोनों एक–दूसरे के सक्रियता के बिना जी भी नहीं सकते। और इसी स्त्री पुरुष नाम के दोनों पहलूओं को एक इकाई के तरह जान लेना, समझ लेना और जीने की कोशिश करना ही विवाह और परिवार नामक व्यवस्था का उद्देश्य हो सकता है।[20]

वर्तमान समय में पाश्चात्य संस्कृति और शिक्षा के प्रचार–प्रसार के प्रभाव से भारत में भी नारी का आंदोलन चल पड़ा है। 20वीं सदी का प्रथमार्द्ध यदि नारी जागृति का काल था तो उत्तरार्द्ध नारी प्रगति का। और 21वीं सदी का यह महत्वपूर्ण पूर्वार्द्ध नारी के तथाकथित सशक्तीकरण का काल है। इस सशक्तीकरण के अंधे दौड़ में नारी के विकास के मायने भी बदल गये हैं। हर क्षेत्र में कैरियर चमकाने की स्त्री की लालसा ने बाजारवाद का हिस्सा बना दिया। बाजारवाद का मूलमंत्र है जो दिखता है वो बिकता है। शायद इसलिए नारी को हर विज्ञापन से जोड़ दिया जाता है। चाहे वो सीमेंट का हो, चॉकलेट का हो, मोबाईल का हो या अंतःवस्त्र का हो। सेक्स और बाजार के समन्वय से जो अर्थशास्त्र बनता है उसने सारे मूल्यों को पीछे छोड़ दिया है। फिल्में, इंटरनेट, मोबाईल, टीवी चैनल से आगे दैनिक पत्र–पत्रिकाओं में हर जगह अपनी तथाकथित ग्लैमर वर्ल्ड बना ली है। यह कहना गलत न होगा स्त्री आज बाजार संस्कृति का खिलौना मात्र बन कर रह गयी है।[21]

परिवार व संतानों को अगर कोई नारी का सहारा व ममत्व न मिले तो उस परिवार के अवनति व अधोपतन को रोकना नामुमकिन है। पुरुषों की बराबरी के नाम पर स्त्रियोचित गुणों व कर्तव्यों का बलिदान नहीं किया जाना चाहिये। ममता, वात्सल्य, उदारता, धैर्य, लज्जा आदि सुलभ गुणों के कारण ही नारी पुरुषों से श्रेष्ठ है। जहाँ कामायनी का रचनाकार "नारी तुम केवल श्रद्धा हो" से नतमस्तक होता है वहीं वैदिक ऋषि घोषणा करता है कि "स्त्री हि ब्रह्मा विभुविथ" अर्थात् उचित आचरण, ज्ञान से नारी तुम निश्चय ही ब्रह्मा की पदवी पाने योग्य हो सकती हो। (ऋगवेद)

डॉ. ए. विमल ने भारत में वर्तमान समय में स्त्री की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है – अब स्त्रियाँ गांव–चौपाल, गलियों–सड़कों, बाजारों से लेकर स्कूल, कॉलेज, दफ्तरों और प्रतिष्ठानों सभी जगहों पर प्रभावी रूप से अपनी सार्थक एवं सशक्त उपस्थिति से सबको चमत्कृत कर रही हैं। स्त्रियों ने कई नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं। देश के सर्वोच्च राष्ट्रपति पद पर श्रीमती प्रतिभा पाटिल, लोक सभा स्पीकर के पद पर मीरा कुमार एवं सुमित्रा महाजन, कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी हैं वहीं राजनीतिक शिखर पर मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे, जयललिता, मायावती, ममता बनर्जी, शीला दीक्षित, सुषमा स्वराज, मेनका गांधी, निर्मला सीतारमन आदि महिलाएं हैं। सामाजिक क्षेत्र में अरूणा राय, मेधा पाटेकर, किरण मजूमदार, ईरोम शर्मिला, सुधा मूर्ति आदि महिलाएं ख्याति प्राप्त हैं। खेल जगत में पीटी उषा, अंजू बॉबी जार्ज, मैरी कॉम, साईना नेहवाल, गीता फोगाट, सानिया मिर्जा, पीवी संधु आदि ने नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं। आईपीएस किरण बेदी, अंतरिक्ष यात्री सुनीता विलियम्स, कल्पना चावला आदि ने उच्च शिक्षा प्राप्त करके विविध क्षेत्रों में अपनी बुद्धि कौशल का परिचय दिया है।

वस्तुतः 21वीं सदी महिला सदी है। वर्ष 2001 महिला सशक्तीकरण वर्ष के रूप में मनाया गया। महिला सशक्तीकरण हेतु वर्ष 2001 में प्रथम बार राष्ट्रीय महिला उत्थान नीति बनाई गई। जो महिलाओं के उत्थान के लिए कार्य करेगी।

कोई भी परिवार, समाज अथवा राष्ट्र तबतक सच्चे अर्थों में प्रगति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता जब तक वह नारी के प्रति भेदभाव, निरादर अथवा हीन भावना का त्याग नहीं करता है। जवाहरलाल नेहरू ने कहा है– 'यदि आपको विकास करना है तो महिलाओं का उत्थान करना होगा।' ■

*mananngoindia@gmail.com*
संपर्क–9953120111

**संदर्भ संकेत**

1 *मनुस्मृति 3.56, मनु 9.27.28 शर्मा व व्यास–भारत का इतिहास*
2 *अथर्ववेद 2.36.1 रामायण, डॉ. जयशंकर मिश्र – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास*
3 *पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर– 'उषा देवता' (ऋगवेद का सुबोध भाष्य)*
4 *शर्मा व व्यास – 'भारत का इतिहास' प्रारंभ से 1200 ई. तक*
5 *अखंड ज्योति, अक्टूबर 2002, वैदिक युग की नारी को 21वीं सदी में पुनः प्रतिष्ठित किया जाएगा*
6 *अनुराधा पांडे–वैदित सभ्यता, आज तक पर आलेख*
7 *सत्यकेतु विद्यालंकार – प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन*
8 *काजल पटेल–वेदों मे नारी का महत्व, प्रज्ञा फैशन*
9 *मनुस्मृति 3.53, डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी – प्राचीन भारत का इतिहास*
10 *बौद्धायन धर्म सूत्र 2/2/66–68 डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र – प्राचीन भारत में नारी*
11 *डॉ. शशि अवस्थी – प्राचीन भारतीय समाज*
12 *डॉ. ए.एस. अल्तेकर – पोजिशन ऑफ विमेन इन एंशिएंट इंडिया*
13 *स्वप्रिल मिश्रा–वैदिक काल में नारी, कटेंट मार्ट पर आलेख*
14 *इंडिया टुडे – साहित्य वार्षिकी 1997*
15 *श्रीराम आहूजा – भारतीय सामाजिक व्यवस्था*
16 *डॉ. लता सिंघल – भारतीय संस्कृति में नारी*
17 *अर्चना मिश्रा –भारत की परंपराओं, नारी की स्थिति का पुनरावलोकन*
18 *शोध गंगा–नारी विषयक आलेख, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय लाइब्रेरी*
19 *नवभारत टाइम्स – नारी क्या बनना चाहती है (लेख), 3 सितम्बर 2011*
20 *सरिता पत्रिका – (नारी विशेषांक) 4 फरवरी 2016*
21 *नारी विषयक अवधारणा, वैदिक काल से आज तक, नूतन पुरातन पर आलेख, 9 अगस्त 2014*